

कृष्णक : सप्तमस्य महावीर श्री ३१११ चिन्तन

विशेषक : राष्ट्रिय भाषा श्री आनन्दधृति श्री

लेखक : श्री आनन्द 'साधक'

प्रकाशक : श्री आनन्द श्री आनन्दधृति
साधक (ब्रह्मदत्त)

प्रथम बार . ई० १९७९ मूल
वि० म० २०३३ ३१११
श्रीर विरचित मूल २५०२

मुख्य : श्रीवन्द गुराना के दिग्
दुर्गा विरचित मूल, भाषा-४

मूल्य : बारह रुपये मूल

प्रकाशकीय

भगवान महावीर की २३वीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर जैनधर्म, दर्शन एवं संस्कृति से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। सबसे बड़े लेखकों एवं विद्वानों ने साहित्य-कला के माध्यम से भगवान महावीर के चरणों में अपनी ध्वाञ्जलि अर्पित की। इस पावन प्रसंग पर हमारी प्रकाशन संस्था ने भी 'तीर्थंकर महावीर' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित कर भगवान महावीर के जीवन एवं उपदेशों से जनता को परिचित कराने का प्रयत्न किया।

प्रकाशन की इसी शृंखला में 'भगवान महावीर और उनका विस्तार' पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने भगवान महावीर के जीवन प्रसंगों को सुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। भगवान महावीर एवं तथागत बुद्ध सम-सामयिक थे, इसलिए दोनों के जीवन में घटनाओं की विविधता में भी एकमूर्तता है। अनेक प्रसंग बहुत ही समान एवं शैली की दृष्टि से भी एक जैसे हैं, तो कुछ प्रसंग बिल्कुल एक दूसरे के विरोधी भी हैं। यह ध्यान देने की बात है कि जैन आगमों में तथागत बुद्ध के विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं है, और जो हैं वे भी तटस्थ दृष्टि से हैं, जबकि बौद्ध पिटकों में भगवान महावीर के व्यक्तित्व को विमल बिखाने का प्रयत्न भी हुआ है।

विद्वान् लेखक ने उन प्रसंगों को अंकित कर उनकी तटस्थ समीक्षा की है, और उसमें से हित-मित-सत्य को ग्रहण करने की जिम्मेदारी पाठक पर छोड़ दी है।

सभी जिज्ञासु पाठकों के लिए यह सुलनात्मक अध्ययन ज्ञानवर्द्धक सिद्ध होगा और भगवान महावीर के निर्मल चोतराग स्वरूप की समझने में सहायक होगा, ऐसा हमें विश्वास है। कुछ स्थल मतभेद के भी हैं, जिनमें आगे अनुसन्धान के लिए बुद्धि का द्वार मुक्त रखने की प्रेरणा है।

इस पुस्तक का निर्देशन राष्ट्रियत आचार्य श्री आनन्द श्रृषि जी महाराज ने किया। पाठ्यलिपि तैयार होने के बाद उसका पुनरावलोकन भी किया। प्रसिद्ध विद्वान मनीषी श्री देवेन्द्रमुनि जी ने भी अवलोकन कर अनेक स्थलों पर संशोधन किया है।

प्रेस सम्बन्धी व्यवस्था के साथ-साथ पुस्तक का पुन निरीक्षण एवं संशोधन कर श्रीपुत्र श्रीचन्द जी मुराना ने जो स्नेह-सौजन्य प्रदर्शित किया है उसके लिए भी हम आभारी हैं।

आशा है सुलनात्मक अध्ययन के इच्छुक पाठकों के लिए यह पुस्तक कुछ नई सामग्री प्रस्तुत करेगी।

मन्त्री

श्री रत्न जैन पुस्तकालय

प्राचीन परम्परा और इतिहास

१. अथर्व वेद : कुबेरीयिका

२. ऐतिहासिक तथ्य

३. निम्न तथ्य

४. वैदिक काव्य

५. अथर्व, कल्प

६. अथर्व

प्राचीन परम्परा और इतिहास

धमन संस्कृति : पूर्वपीठिका

त्रैलोक्य एक मानववारी धर्म है जो साध्य और मायन—दोनों की पवित्रता में विश्वास करता है। उसने जाति और वर्ग के भेदभाव को दूर कर प्राणिमान की शक्ति को प्रतिष्ठित किया है। इसलिए उसका किसी विशेष काल-गण्ड में प्रारम्भ हुआ, ऐसा नहीं माना जा सकता। उसका तो प्रारम्भ सभी से है जो से मानव इस भू पर अवतरित हुआ है। मन उसे यदि अगाधि और अनन्त कहा जाय तो उचित ही होगा।

ऐतिहासिक तथ्य

ऐतिहासिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो इन तथ्यों को उद्घाटित करने वाले अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। पुरातत्त्व, भाषाविज्ञान, साहित्य और मूलविविज्ञान से अब यह स्पष्ट हो चुका है कि वैदिक संस्कृति के पूर्व भी कोई एक समृद्ध संस्कृति थी जिसे लघाकपित आर्यों ने अनार्य संस्कृति कहकर सम्बोधित किया। यही अनार्य संस्कृति धमन संस्कृति नहीं जाती है। केद और अवेस्ता में वर्णित घटनाओं के आधार पर विद्वानों ने प्रायः यह निष्कर्ष करने का प्रयास किया है कि आर्य हमारे भारत में बाहुर से ही आये थे। यही आकर उन्हें ब्राह्म, अगुर, दाग और दस्यु जैसी उच्च संस्कृति सम्पन्न जातियों से संधर्ष करना पड़ा। देशों में उनके विपक्ष नरसो और शत्रुओं (व्यापारियों) का उन्मेष जाता है जिनके साथ आर्यों के अनेक युद्ध हुए हैं। वैदिक साहित्य विशेषतः श्रुति में उल्लिखित आर्य देशोदाग और पुरुषुराग का युद्ध ऐसा ही था जिनमें उन्होंने आर्येतर जातियों को पराजित किया था। उत्तरवर्तीन वैदिक साहित्य में भी इस प्रकार के अनेक उद्धरण मिलते हैं।

लघाकपित आर्य-अनार्य संस्कृति के सम्मिश्रित रूप में भारतीय संस्कृति का डोँचा खड़ा हुआ है। मूलविविज्ञान के अनुसार जिस प्रथम अनार्य जाति का पता चलता है, वह है कृष्णाय (Negrito)। कृष्णायों की गन्तान आज भी अम्बमान द्वीपों में पाई जाती है। तिब्बत, बर्मा, बलोचिस्तान में भी उनके चिह्न मिलते हैं। कृष्णाय जाति के बाद भारत में पूर्व की ओर से आर्येय (Austrian) जाति आई। उनकी भाषा, धर्म और संस्कृति का रूप हिन्द-चीन और प्रचान्त महासागरीय द्वीपों में उपलब्ध होता है। यह रूप कुछ तो कृष्णाय जाति में अन्तर्भूत हो गया और कुछ नाली, बोन, मुण्डा, संधाम, मुन्दरी, कुर्कु और शबर जातियों के रूप में तोष रह गया। बाद में तो ये जातियाँ उत्तर-मध्य भारत और दक्षिण-पश्चिम भारत में भी फैल गईं। आर्य और

६ भगवान महावीर और उनका चिन्तन

कहा है।^७ बेनी मुनि भी प्रायः ही थे।^८ श्रीमद्भागवत् में इन मुनियों के अनेक धर्मेतेता के रूप में नामिगुण श्रुतमदेव का उल्लेख हुआ है।^९

बेनीमरकालीन साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट परिगणित होता है कि मर्त्य आदि में जन्म होकर वैदिक श्रुति शास्त्रों की आध्यात्मिक मार्गना की ओर उन्मुख हुए। 'अद्यान्तो ब्रह्मविज्ञाना' इगो का प्रतीत है।^{१०} वे ज्ञान-ज्ञान के बालविक पुनारी हो गये। यज्ञ-याग की व्याख्यायें बदलने लगी। शास्त्रों के प्रति सम्मान की भावना जागरित हुई।^{११} ब्रह्मा की प्रतिपत्तिना प्रारम्भ हुई। आत्म ज्ञान की ओर श्रुति का ध्यान केन्द्रित हो गया। यह मज नि मन्दह जैनधर्म के प्रभाव का प्रतिफल कहा जाता चाहिए।

इस समय तक वैदिक मन्त्रुनि राष्ट्रीय सरकार से दूर हट गई थी और उसका स्थान धर्मगुरु सन्त्रुनि ने ले लिया था। ब्राह्मण वर्ग के स्थान पर क्षत्रिय वर्ग प्रमुख हो आ गया था और वह अध्यात्म विद्या का विशेष संरक्षक बन गया था। भगवान् श्रुतमदेव

वेदों में उल्लिखित भगवान् श्रुतमदेव को वैरागिक काल में विशेष मान्यता मिली। श्रीमद्भागवत् में उन्हें विष्णु का अवतार स्वीकार करके उनके समूचे चरित का आलेखन किया गया है। इस अवतार का मुख्य उद्देश्य वातरक्षता धर्मगुरु श्रुति के धर्म का प्रचार-प्रसार करना था। कृष्ण (बैल), जटाजूट आदि साहस्य के कारण विद्वानों में श्रुतमदेव और शिव को एकाकार बताने का प्रयत्न किया है।^{१२}

श्रुतमदेव तथा उनके उत्तरवर्ती जैन तीर्थंकरों के छुटपुट उल्लेख वैदिक साहित्य तथा बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं।^{१३}

पुरातात्विक प्रमाण भी जैनधर्म और उसके तीर्थंकरों की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

भगवान् पारश्वनाथ

तीर्थंकर पारश्वनाथ भगवान् महावीर से लगभग २५० वर्ष पूर्व हुए थे। उक्त

७ सायण प्रायः, १०, १३६, २

८ श्रुतवेद १०, ११, १३६, १

९ श्रीमद्भागवत् ५, ३, २०

१० ब्रह्मसूत्र

११ अथर्ववेद, १५, २, ३, १, २

१२ राजकुमार जैन : श्रुतमदेव और शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यतायें—मुनि हमारोह

सन्त्रुनि ग्रन्थ, पृ० ६२६।

१३ बेसिये, सेवर का ग्रन्थ Jainism in Buddhist Literature, प्रथम अध्याय।

व्यक्तित्व और सिद्धान्तों का दर्शन जैन-बौद्ध साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता है। वे 'वाउज्जाममम' के प्रवर्तक थे। तयागत बुद्ध ने उनकी परम्परा में दीक्षित होकर कुछ समय तक आध्यात्मिक साधना की थी। बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भी बौद्धधर्म में दीक्षित होने के पूर्व पार्श्व-परम्परा के अनुयायी थे। कालान्तर में जैन धर्म की उत्कृष्ट साधना की आराधना करने में असमर्थ होने से उन्होंने मध्यम मार्ग अपना लिया।

भगवान महावीर

भगवान महावीर को तीर्थंकर ऋषभदेव, मेमिनाथ और पार्श्वनाथ आदि जैसे महापुरुषों का दर्शन विरासत में मिला था। उन्होंने स्वयं भी तत्कालीन सामाजिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं का समीक्षण किया और यथानुसार जन-समान के कल्याणार्थ अपना चिंतन प्रस्तुत किया। वे विष्णुदत्त मानवतावादी और आत्मवादी थे। उनकी दृष्टि व्यक्ति की पवित्र शक्ति और पवित्र साधनों पर केन्द्रित थी। ये साधन उनकी स्वयं की सौज के परिणाम तो थे ही परन्तु एक पुरातन काल से चली आयी ऐतिहासिक परम्परा से भी अनुस्यूत थे। अतः वे जैनधर्म के संस्थापक न होकर प्रचारक, प्रसारक और सुधारक थे।

भगवान महावीर की प्राचीन परम्परा पूर्वोन्मिश्रित धम्म संस्कृति से सम्बद्ध है जिसमें नित्री आन्तरिक श्रम अथवा पुरुषार्थ से कर्मों का घम (शमन) साध्य होता है। उसमें जातीय अथवा वर्गीय भेदभाव न होकर सभी प्राणी एक श्रम (ममानतावादी) सिद्धान्त पर अवलम्बित रहने हैं और पुनीत साध्य को प्राप्त करते हैं। साध्य की प्राप्ति में उसके पास सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य का सुन्दर समन्वय होता निनात अपेक्षित है। श्रमण संस्कृति की इस साधना पद्धति से प्राचीन मित्र और गुमेरियन साधना बहुत प्रभावित हुई। उन पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रत्येक संस्कृति और सभ्यता में प्रगतिशीलता के तत्त्व सन्निहित होते हैं। यदि ये तत्त्व उसमें न रहें तो यथाशीघ्र वह काल-कवचित हो जाती है। भारतीय संस्कृति में यह तत्त्व परिपूर्ण मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। उसकी मणिमाला में विविधता में एकता और असमानता में समानता का विरोधाभास इतने सुन्दर ढंग से पिरोया गया है जो अग्नय दुर्लभ है। उसके प्रतिरोध में साम्प्रदायिक और धार्मिक विरोधी तत्त्व भी उपजग्न हो रहे हैं पर उनकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक और साम्प्रदायिक सकीर्णता का ही विशेष हाथ रहा है। शासक इसीलिए वे कभी स्थायी नहीं रह सके।

समान, धर्म, संस्कृति और साहित्य पर इस सकीर्णता का प्रभाव अलक्षित नहीं, पर वह भी किसी काल तक सीमित रहा है। श्रमण-ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण-श्रमण में सर्प-नकुलकृ विरोध^{१४} तथा सामूहिक साम्प्रदायिक अमहिष्णुतामूलक अत्याचारों

अत्रियावाद के ८४ भेद हैं। जीवादि सप्त पदार्थ और उनके स्व-पर के भेद से दो भेद हैं। ये सभी भेद पुनः काल, घटच्छा आदि के भेद से ११ प्रकार के हैं। इस प्रकार $७ \times २ \times ६ = ८४$ हुए।^१ आत्मा के अक्षिप्त होने पर अत्रियावाद में वृत्ततादा और अहन्ताभ्यागमदोष जायेंगे। समस्त वस्तु जगत् भी सर्व वस्तु स्वरूप हो जायेगा।^२

३. अज्ञानवाद

इसके अनुसार अमण-आज्ञाओं के मन परस्पर विच्छिन्न हैं, अतः अगम्य के अधिक निश्चय है। इमतिष् अज्ञान को ही खेच्छ माना जाना चाहिए। फिर समार में कोई अनिश्चय ज्ञानी नहीं जिसे सर्वज्ञ कहा जा सके। ज्ञान त्रय पदार्थ के पूर्ण स्वरूप को एक साथ ज्ञान भी नहीं मगना। अज्ञानता होने में वित्त-विशुद्धि अधिष्ठानी रह सकती है। अज्ञानवादी जिस अज्ञान को वस्तुत्व का कारण मानते हैं वह ६७ प्रकार का है—मत्, अमत्, सदमत्, अवबन्ध, मद् वतन्ध, असद् वबन्ध और मदमद्बन्ध। इन सात प्रकारों में जीवादि नव पदार्थ नहीं जाने जा सकते। अजीवादि पदार्थों में भी प्रत्येक के मान विवक्षित होते हैं। अतः $६ \times ७ = ४२$ मत हुए। इनमें चार भेद और मिलाये जाते हैं—(i-iii) अर्थ की उत्पत्ति मत्, असत्, सदमत् से होनी है, यह तीन जानना है और इसमें फल भी क्या है, (iv) वह अवबन्ध भी होनी है, वह तीन जानना है और उन जानने से फल भी क्या है।^३

दीपनिकाय के अनुसार अज्ञानवाद का प्रस्थापक गच्छय वेन्दित्पुत्त है।^४ वे हर दार्शनिक समस्या के प्रति अज्ञानता और अनिश्चितता व्यक्त करते हैं। दीनाक गच्छय का नाम ही भूत मये। उन्होंने उपर्युक्त मिद्वान्नों को त्रिन भाषाओं से सम्बद्ध माना है वे सात् प्रतिपत्तु नहीं नहीं मगते। उदाहरणार्थ, उन्होंने मकगनि गोशाल का सम्बन्ध अज्ञानवाद, नियतिवाद और विनववाद से जोड़ा है जबकि गच्छय वेन्दित्पुत्त से अपरिचिन्ता व्यक्त की है। वस्तुतः अज्ञानवाद सत्रय वेन्दित्पुत्त का मिद्वान्न है और नियतिवाद मकगनि गोशाल का। पानि साहित्य में इसे अधिक स्पष्ट किया गया है। मगवती श्रुत में भी गोशालक को नियतिवाद का प्रवक्ता माना गया है। सूत्रकुलांग में अज्ञानवाद को 'पासद्वद्वा' 'मिच्छादिद्वी' 'अणारिया' जैसे विशेषणों से सम्बद्ध किया है। मगवान महावीर के धर्म को स्वीकारने वाली में सम्बन्ध का नाम आता है। समर्थ है, वे सत्रय वेन्दित्पुत्त ही हैं।^५

२ सूत्रकुलांग १, १, १२, वृ० पृ० २०८-१; निर्मुक्ति ११६-१२१, ९, २७; वृ० पृ० १५२।

६ बही, १, १२; नि० १२१; वृत्ति पृ० २१०-१।

७ बही, १, १२, २ की वृत्ति।

८ अगुतरनिकाय, माग ३, पृ० २६५।

९ मगवान महावीर और महारथ बुद्ध, पृ० २२-२४; विशेष देखिये—मगवान महावीर; एक अनुदीनन, देवेन्द्र मुनि पृ० १०६

क्रियावाद के १८०, अक्रियावाद के ८४, अज्ञानवाद के १७ और नियमवाद के ३२।^१ बारहवें अंग दृष्टिवाद में भी जैनेतर मतों का वर्णन रहा होगा। सम्भव है, इन मतों के मूलतः दो भेद रहे हों—क्रियावाद और अक्रियावाद। तटस्थ-वृत्ति ने इन दोनों बाद अज्ञानवाद को, और उसके उपराल्प नियमवाद को जग्न दिया होगा।

१. क्रियावाद

इस दर्शन के अनुसार जीव का अस्तित्व है और वह अपने पुण्य-पाप रूप कर्मों के फल का भोक्ता है। इन कर्मों की निर्जरा कर उनके मत में जीव निर्वाण प्राप्त कर लेता है। कहीं-कहीं क्रिया का अर्थ चारित्र्य भी किया गया है। तदनुसार व्यक्ति को क्रिया ही फलदायी होती है, ज्ञान नहीं, क्योंकि वह ज्ञान में सगुण्ट नहीं होता। अ एकान्त रूप से जीवादि पदार्थों को स्वीकारने वाला मत क्रियावाद है। उसके १८० भेद हैं। जीव, अजीव, आत्मव, बन्ध, सत्वर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप—ये नव पदार्थ स्वतः और परतः के भेद से दो प्रकार के हैं। वे नित्य और अनित्य भी रहते हैं। पुनः ये सभी भेद काल, निवर्ति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा के भेद से ४ प्रकार के हैं। इस प्रकार $६ \times २ \times २ \times ४ = १८०$ भेद हुए।

क्रियावाद की दृष्टि में ज्ञानरहित क्रिया से किसी भी कार्य की निधि नहीं होती। इसीलिए 'पदम नाथ तओ दया' कहा गया है। 'आहुगु विग्जाचरण पमोषण' का भी यही सवर्ण है।^२ इसी प्रसंग में साक्य, वैशेषिक, नैयायिक एवं बौद्धों को क्रियावादी कहा गया है। जैनदर्शन भी क्रियावादी है। उनके अनुसार काल, स्वभाव, नियति, पुरुषार्थ, कर्म आदि समस्त पदार्थों को पृथक्-पृथक् मानना मिथ्या है। उनके सम्मिलित स्वरूप को ही यहाँ स्वीकार किया गया है।^३

२. अक्रियावाद

नियमवाद के विपरीत अक्रियावाद में आत्मा, पुण्य, पाप आदि कर्मों का व स्थान नहीं। लोकायतिक और बौद्धों को इस दृष्टि से अक्रियावादी कहा जा सकता है। पालि साहित्य में निगण्टनातपुल को क्रियावादी कहा गया है जबकि बुद्ध ने स्वयं क क्रियावादी और अक्रियावादी—दोनों माना है। क्रियावादी इसलिए कि वे जीवों को सत्कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं और अक्रियावादी इसलिए कि वे दुष्कर्मों को त्यागने का उपदेश देते हैं। मूलवृत्तांग में भी बुद्ध को एक स्थान पर क्रियावादी और दूसरे स्थान पर अक्रियावादी कहा गया है। आत्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करने के कारण ही उन्हें यहाँ सम्मिलित किया गया है; क्योंकि वह क्रियावादी ही हैं।

^१ मूलवृत्तांग, निरुक्ति १, १२, ११६।
^२ बही १, १२, १११।
^३ बही, १, १२; निरुक्ति १२१; वृत्तिपृ० २१-२२।

अध्यावादा के ८४ भेद हैं। जीवादि सत्त्व पदार्थ और उनके स्व घर के भेद से दो भेद हैं। वे सभी भेद पुनः वान, महच्छा आदि के भेद से १५ प्रकार के हैं। इस प्रकार $७ \times २ \times ६ = ८४$ हुए।^१ आत्मा के अक्रिय होने पर अध्यावादा में कृतनाम और सकृताभ्यासमदोष आनेसे। समस्त वस्तु जगत् भी सर्व वस्तु स्वल्प हो आयेगा।^२

३. अज्ञानवाद

इसके अनुसार अमल-ब्रह्मणों के सत्त्व परस्पर विच्छेद हैं, अतः अगम्य के अधिष्ठानिष्ठ हैं। इससे अज्ञान को ही ध्येय माना जाना चाहिये। फिर समस्त में कोई अधिष्ठान ज्ञानी नहीं जिसे सर्वज्ञ कहा जा सके। ज्ञान ज्ञेय पदार्थ के पूर्ण स्वरूप को एक साथ ज्ञान भी नहीं सकता। अज्ञानता होने से चित्त-विमुक्ति अधिक बनी रह सकती है। अज्ञानवादी त्रिण अज्ञान को कल्याण का कारण मानते हैं वह ६७ प्रकार का है—मत्, अमत्, गदमत्, अवक्लब्ध, गद्वक्लब्ध, अमद्वक्लब्ध और गदगद्वक्लब्ध। इन सात प्रकारों से जीवादि सत्त्व पदार्थ नहीं जाने जा सकते। अजीवादि पदार्थों में भी प्रत्येक के सात विकल्प होते हैं। अतः $६ \times ७ = ४२$ मत् हुए। इनमें चार भेद और मिलाये जाते हैं—(i-iii) अर्थ की उत्पत्ति मत्, अमत्, गदमत् से होती है, यह तीन जानना है और उससे पत्त भी क्या है, (iv) वह अवक्लब्ध भी होती है, यह तीन जानना है और उस जानने से पत्त भी क्या है।^३

दीपनिकाय के अनुसार अज्ञानवाद का प्रस्थापक मज्झय वेनट्ठिपुत्त है।^४ वे हुए दार्शनिक समस्या के प्रति अज्ञानता और अनिश्चिन्ता व्यक्त करते हैं। पीलाक मज्झय का नाम ही भूय गये। उन्होंने उपसृक्त मिढाल्लो को तिन आचार्यों से सम्बद्ध माना है वे मत् प्रणिशत् नहीं नहीं समझे। उदाहरणार्थ, उन्होंने मक्कल्लि गोपाल का सम्बन्ध अज्ञानवाद, नियतिवाद और त्रिणवाद से जोड़ा है जबकि मज्झय वेनट्ठिपुत्त से अपरिचितता व्यक्त की है। वस्तुतः अज्ञानवाद मज्झय वेनट्ठिपुत्त का मिढाल्ल है और नियतिवाद मक्कल्लि गोपाल का। पानि साहित्य में इसे अधिष्ठानिष्ठ किया गया है। मगवती सूत्र में भी गोपाल का नियतिवाद का प्रस्ता माना गया है। मूलकृतांग में अज्ञानवाद को 'पामबद्धा' 'मिच्छादिष्टी' 'अचारिया' जैसे विशेषणों से सम्बद्ध किया है। मगवान महावीर के धर्म की स्वीकारने वालों में मज्झय का नाम आता है। समस्त है, वे सर्व वेनट्ठिपुत्त ही हों।^५

१ मूलकृतांग १, १, १२; मू० पृ० २०८-९, नियुक्ति ११६-१२१, ६, २७; मू० पृ० १५२।

२ वही, १, १२; नि० १२१, वृत्ति पृ० २१०-१।

३ वही, १, १२, २ की वृत्ति।

४ अगुत्तरनिकाय, माग ३, पृ० २६५।

५ मगवान महावीर और महात्मा बुद्ध, पृ० २२-२४, विभिन्न देखिये—मगवान महावीर : एक अनुदीनन, देवेन्द्र मुनि पृ० १-६

७. आत्मवैतनादी

गुरुहोम म इसे मान्य तथा वैतनिक वर्गों से सम्बन्ध प्राप्त है। पर महावीरों के बाद आत्मा को वस्तु मानने मात्र ने के कारण वे आत्मवैतनादी से गये हैं।^{१४}

८. आत्मावैतनाद

तीर्थांक आत्मावैतनाद एक अस्वाभाविकवैतनाद दोनों वर्गों को समान्य मानने है। इसके अनुसार जैसे एक ही पृथ्वी समस्त विविध वस्तुओं में वर्तित होती है, उसी प्रकार एक ही आत्मवैतनाद समस्त जगत् के जगत् वस्तुओं में देखा जाता है। उन्नी दृष्टि में एक ही जगत् विषय आत्मा पृथ्वी आदि वस्तुओं के कारण से अनेक प्रकार का देखा जाता है परन्तु इस भेद के कारण आत्मा के पुन स्वरूप में कोई भेद नहीं होता। चेतन अचेतन वस्तु समस्त वस्तुओं एक ही आत्मा है।^{१५} आत्मावैतनाद में न प्रमाण है, न प्रमेय, न प्रतिपाद्य है, न प्रतिपादक, न हेतु है, न ह्युदात्त और न उदात्त व्यापक। समस्त जगत् आत्मा से अभिन्न होने के कारण एक ही जाता है। इस विधि में विज्ञा, पुन, मित्र आदि का भेद नहीं रहता, गुणादिक नहीं रहते। इस आत्मावैतनाद निर्दोष नहीं।

९. स्वभाववाद

स्वभाववाद के अनुसार जगत् की विविधता का मूल कारण स्वभाव है। कण्टक की तीक्ष्णता, मयूर की विविधता और मृगों का रस यह सब स्वभाव से ही होता है।^{१६} बुद्धचरित^{१७} और शास्त्रवार्तासमुच्चय^{१८} में भी स्वभाववाद की यही व्याख्या की गई है। शीमांक ने इसे लज्जवीवतभद्रीरवाद से सम्बन्ध किया है और यह कारण दिया है कि चूंकि वच महाभूतों से आत्मा पृथक् नहीं है, इसलिये जगत् की विविधता में स्वभाववाद कारण रूप माना जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त अव्याकृतवाद, कालवाद, ग्रहधरावाद, पुरुषवाद, पुरुषार्थवाद, ईश्वरवाद, ईशवाद आदि जैसे अनेक वादों के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें लोकनिर्माण के कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। जीवनार्थ में भी इन सभी को कारण माना गया है, परन्तु उनके समन्वित रूप को, न कि पृथक्-पृथक् रूप को।

१४ गुरुहोम १, १, १६ वृत्ति पृ. २४।

१५ यही, १, १, ॥ वृत्ति पृ. १६।

१६ यही, वृत्ति पृ. ३८, टीपिका पृ. ५।

१७ बुद्धचरित ५।

१८ शास्त्रवार्तासमुच्चय १६६-१७२।

महि कासारिहितो केवलएहिनी जायए किंचि ।

इह मुण्यरथभाहवि ता सन्ने समुदिमा हेउ ॥^{१९}

इसके साथ ही जैनदर्शन में कर्म को भी सत्कार के इस वैविध्य का कारण बताया गया है । उसको भी मुल-दुःख का कारण माना गया है । कर्म मूल है क्योंकि मुन्यादि से सम्बद्ध होने के कारण भी व्यक्ति तदनुकूल अनुभव करता है । मूर्त कर्म द्वारा अमूर्त आत्मा का उपवास अथवा उपकार उसी प्रकार होता है जिस प्रकार मदिरा आदि मूर्त वस्तुओं द्वारा विज्ञानादि अमूर्त वस्तुओं का । लोको एहं द्रव्यमय है । द्रव्य उत्पाद-व्यय-प्रोक्ष्यारमक है । उनका मूलन पर्यायो में परिणमन, पूर्व पर्यायो का विनाश तथा मूल अथ को स्थिति रहती है । इससे ईश्वर को परिचायक मानने की आवश्यकता ही नहीं ।

१०. आरम्यक

आरम्यक अरण्य में ही रहता अपना धर्म समझते थे । वे बन्द-भूग-फलाहारी, वृक्षमूलबानी, घामन्मकवासी तथा सर्वसाधनानुष्ठान से निवृत्त रहते थे और ऐकेश्वर्य जीवों के घात से प्रायः अपना निर्वाह करने थे । तापस आदि ऐसे ही होते थे । वे द्रव्यनः अनेक वस्तुओं का आचरण करने पर भी मायत उनसे घृण्य रहते थे । इसके पालक प्रायः ब्राह्मण रहा करते थे । जन. वे अपने आपको अहस्तव्य मानते थे । उनका मन था—सूत्र भ्यागाद्य प्राणायम म जपेन् निश्चिन्द् दद्यात् ।^{२०} पालि साहित्य में भी आरम्यकों और परित्राजकों के पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं ।

११. अग्न्य सम्प्रदाय

उपर्युक्त सम्प्रदायों के अतिरिक्त अग्न्य साहित्य में और भी अनेक प्रकार के सम्प्रदायों के उल्लेख मिलते हैं । अग्न्य व्याकरण^{२१} में असत्यसायक के रूप में सम्प्रदायों का विभाजन इस प्रकार किया है—

१. नारित्तवादी अथवा घामलोचवादी—चार्वक

२. पचस्कन्धवादी—बौद्ध

३. मनोजीववादी ।

४. वामुजीववादी ।

५. अग्ने से जगत् की उत्पत्ति मानने वाले ।

६. लोक को स्वयमूकृत मानने वाले ।

७. समार की प्रजापति द्वारा निर्मित मानने वाले ।

१९ मूचकृताग २, ५, १५ वृत्ति ।

२० मूल २, २, २८-२९ ।

२१ अध्ययन २९ व ३१ ।

१८ भगवान् महावीर और उनका विचार

- ८ माते बनार को विष्णुगत मागते बाते ।
- ९ भ्रात्रा को मरु मराई, बेदर सिंह, मिथित और मिथित म
- १० जगत को धारिण्डर मागते बाते ।
- ११ स्वमात्रपादी ।
१२. टोपादी ।
- १३ नियतिपादी ।
- १४ ईश्वरपादी ।

‘नापापमहद्भावो’ के लक्ष्यपूर्व नापक पदार्थों के अन्वय में एक मंत्र के ।
विशेष मा बानो के प्रकाश का उद्देश्य है । उन मंत्र नामों के साथ व है—

- १ कर्क—विदग्धो भयवा बहनीपादी-बोलीनपादी तापम ।
- २ भोक्ति—बीषदो से निमित्त बहनीपादी ।
- ३ समंशक्ति—समंशज भयवा बहनीपादी रगने बाते ।
४. मिथुन—मिथुन भयवा बहनीपादी रगने बाते ।
- ५ पट्टरग—मिथुन, मरु मरुने बाते ।
- ६ गौतम—गाय में बहनी रगने बाते ।
- ७ गोत्रनी—गोत्रन रगने बाते ।
८. गृहिधर्मो—गृहपात्रम को ही ध्येष्ट मानने बाते ।
- ९ धर्मवित्तव—धर्मवित्तव का अध्ययन करने बाते ।
- १० अविष्ट—विनयवादी ।
११. वृद्धा—सम्यगम में विश्वास रगने बाते ।
१२. याचक—धर्मधोता ।
- १३ रत्नगट—रत्न बहनीपादी परित्रात्र । २२

भयन साहित्य में परमतो का उल्लेख उनके नामों से हुआ है—जैसे ऐसे ।
यमाणा, अग्ययुमिका, पातस्था, दिमाचरा, अग्यनीचिका, मिथ्यादृष्टि वाला आदि
इसलिए उनका सही विवरण मिलना कठिन हो जाता है । मूलकृतियों के कुशील अर्थक
में चुलिकार ने कुछ अग्ययमी मन्त्रप्रदायों का उल्लेख किया है । उनमें प्रमुख हैं—
गौतम, गोत्रनिक, रश्देवता, वीरमन्त्रक, अग्निहोमवादी तथा जल-शोधवादी । इति
सायित ग्रन्थ में कुछ अर्हद्वय श्रुतियों का उल्लेख है । उनमें से कुछ ये हैं—अतिग-
अतिरस, भारद्वाज, महाबलवप, मन्त्रिपुत्र, यातवल्क्य, बाहुव, माधुरायण, स-
यायण, वरिसव कर्क, अरियायण, माध्यातिपुत्र वरुण, रामपुत्र, हरिगिरि, मा-
यम, वरुण, वैश्रमण ।

२२ औपपातिक ३८वां मूल भी देखिये ।

औरानिबभूज मे गवानटवासी वानप्रस्थों का उत्प्रेष विमता है—

१. होतिय—अग्निहोम करने वाले ।
२. पोतिय—बहनपारी ।
३. कोतिय—भूनायी ।
४. जणई—याज्ञिक ।
५. मट्टई—ध्वजानी ।
६. बालई—मारा मावान सेकर चलने वाले ।
७. हुबडई—हुषी सेकर चलने वाले ।
८. वनुवगनिय—दीनों से बहावर गाने वाले ।
९. उममउमउ, समउमउ और निमउमउ—स्नान करने वाले ।
१०. संपवगान—दारीर पर भिट्टी लगाकर स्नान करने वाले ।
११. इनिवबुमव—वगा के दक्षिण तट पर रहने वाले ।
१२. उत्तरबुमव—गंगा के उत्तर तट पर रहने वाले ।
१३. संववमव—संघ बहावर मोहन करने वाले ।
१४. बूलवमव—बिनारे पर लड़े होकर आवाज कर मोहन करने वाले ।
१५. मिणबुडव—बुधु प्रसाज करने वाले ।
१६. हत्तितावत—हाथी की मार कर एक वर्ष तक उसे लाने वाले ।
१७. उहडव—दण्ड की ऊपर बरसे बसाने वाले ।
१८. दिगापोवनी—दिना मिच्छन करने वाले ।
१९. ववकपोगी—बम्बल पहनने वाले ।
२०. बहुवामी—जलवागी ।
२१. विलवागी—विष में रहने वाले ।
२२. वेववागी—समुद्र के बिनारे रहने वाले ।
२३. ववउमूडिआ—बूटा के नीचे रहने वाले ।
२४. बहुमवणी (जमवणी), वायुमवणी और सेवामवणी ।

इसी सूत्र में अत्रत्रिज यमन का जमन से उत्प्रेष विषय गया है । संगा (गांध्य), ओई (योगी), वविन (वपिस), मिउव (मुगु ध्वि के अनुपायी), हत (वनवासी, पर मिद्यार्थ वामप्रमण करने वाले), परमहम (मदी तटवागी तथा वरवादि छोडकर प्राण त्याग करने वाले), बहुउदय (वाँव में एक रात और मगर में पाँच रात रहने वाले), बुडिउव (शूटवागी तथा रागादि स्वागी), वण्डपरिभ्यायन (हरण परित्राजक) उनमें प्रमुख हैं । आश्रण परित्राजकों में वण्ड, कण्ड, अण्ड, परासर, कण्ड-दीवायन, देवपुत और चारय तथा लात्रिय परित्राजकों में सेमई, समिहार, मणई, मणई, निदेह, रावारय प्रमुख हैं । ये परित्राजक वेद-वेदांग में निष्ठा, स्नानादि में निरवाम करने वाले, गादे ब्राह्म से रहने वाले और अनर्धदण्ड से विरत रहने वाले थे ।

दुपरतरिया (दो घर छोड़कर मिठा लेने वाले), तिपरतरिया, सतापरतरिया, उप्पन बेटिया (बमल के डठल साकर रहने वाले), धरसमुदागिय (प्रत्येक घर से मिठा लेने वाले) विम्बुअतरिया (विद्युत्पात के समय मिठा न लेने वाले) तथा उट्टियसमय (हिमो बड़े मिट्टी के बर्तन में बँटकर तप करने वाले)। इनके अनिरिक्त अनुवर्तनिय परपरिवाइय तथा मूदकस्मिय धमण भी थे। मात निहको का भी यहाँ उल्लेख का आवश्यक है—बदुरय (प्रवर्तक—आमालि), जीवपएसिय (प्रवर्तक—निधुगुल, अश्वत्थिय (प्रवर्तक—आपादाचार्य), सामुक्केइय (संस्थापक—अश्वमिष), दोकिरिय (प्रवर्तक—गमाचार्य), तेरासिया (संस्थापक—रोहिगुल) तथा अवडिय (संस्थापक—गोट्टा माहिल)। ये मूलतः हिमो न हिमो सम्प्रदाय से सम्बन्ध आचार्य थे। मात साहिय में धमणों के पाँच भेद भी दिये गये हैं। निर्गन्ध, शाश्य, तापस, वैरिक और आजोवक। इनमें से आज निर्गन्ध और शाश्य ही लोप रहे हैं।

इस प्रकार पालि-श्रावृत-मरुत साहित्य में षड्दर्शनों के अतिरिक्त प्राचीनकाल में विशेषतः मगवान महावीर के काल में अनेक बादो का विवरण मिलता है। परा उनका मूल सैद्धान्तिक साहित्य उपलब्ध नहीं होता। सम्भवतः अधिकांश उनका का कोई विशेष साहित्य था भी नहीं भग्यथा उनका उत्प्रेम अवश्य मिलता। इसीलिए प्रतीत होता है कि वे बाद अधिक प्रभावक नहीं रहे होंगे तथा यह भी सम्भव है कि उनका जीवनकाल अधिक नहीं रहा होगा। (आवश्यकता यह है कि इन विवरण उनका जीवनकाल अधिक नहीं रहा होगा।) (आवश्यकता यह है कि इन विवरण का भी शोध की जाय और उनके सम्बन्ध में गम्भीर विचार किया जाय। मानव के लिए उनकी बहुत प्राणीय सम्पत्ति में उनके ध्यान का निर्णय किया जाना अवशिष्ट है।)

भगवान् महावीरः स्वविनय्य सोऽ विनयेऽपि

[illegible][illegible]

अनुसूचित जाति आरक्षण विधेय

[illegible]

भगवान महावीर : व्यक्तित्व और विश्लेषण

तीर्थंकर पार्ष्वनाथ के बाद भगवान महावीर सद्यस्वी वनाश्वी ई० पू० का एक ऐसा उन्मानितकारी व्यक्तित्व था जिन्होंने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक तत्त्वों का सूक्ष्म अध्ययन कर सर्वसाधारण व्यक्ति की मूलभूत समस्याओं का मौलिक समाधान प्रस्तुत किया । जिस समय ईएन वे अरघुस्त, कितिलीन में ज़िरेमिया और ईजाकेल, चीन में बन्धूशियस और साओले, यूनान में पाइथोगोरस, अफसानून और गुरुरान प्रभृति उन्मत्कोटि के चिन्मक अपना चिन्तन प्रस्तुत कर रहे थे, उसी समय भारत वनुम्बरा में पूर्ण वन्यप, मन्गनि गोपाल, अजिन वेत्तकम्बलि, प्रबुध कात्यायन, सञ्जय वेनट्टिपुत्र, गौतमबुद्ध और निबन्ध शातृपुत्र (निगच्छनातपुत्र) एवं अन्य विचारक अपने-अपने ढंग से तात्त्विक ज्वनन्त दार्शनिक प्रश्नों का समाधान उपस्थित कर रहे थे ।

उक्त भारतीय दार्शनिक प्रायः अमन मस्कृति की विविध शाखाओं के प्रवर्तक थे । यह पहेली अतृप्तो-नी है कि महात्मा बुद्ध ने अपने समसामयिक आचार्य तीर्थंकरों में केवल इन अमन दार्शनिकों का ही सविशेष उल्लेख क्यों किया ? यह अधिक सम्भव है कि उस समय चूँकि वैदिक सस्कृति की लोचनियता कम होती चली जा रही थी और कोई विशेष प्रभावक वैदिक दार्शनिक उनके समक्ष था नहीं, इसलिए बुद्ध ने उनके विचार रखना आवश्यक ही नहीं समझा ।

तत्कालीन सामाजिक स्थिति

भगवान महावीर के समय तक वैदिक सस्कृति में उन्मत्तलता, अमानवीयता एवं घनघोर अहंकार के मद में आपूर कूरता प्रदीप्त थी । यज्ञप्रधान इस सस्कृति के शास्त्रण में हुताशन की भूक पशु-पक्षी तथा निरपराध नर-नारी और शिशु समुदाय भी नि सकीच समर्पित कर दिये जाने थे । “यज्ञार्थं पशवः स्वयमेव स्वयमुवा” कहकर “वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति” जैसे स्वपरवञ्चक भारे समाकर याज्ञिक यज्ञादि अनुष्ठानों का औचित्य प्रगट कर रहे थे । उनके इस समर्पण में अद्धा और भक्तिपूर्वक भौतिक साधनों की अधिकाधिक उपलब्धि का उद्देश्य निहित था । आध्यात्मिक उत्कर्ष की सीमा स्वर्ण ही थी जिसमें धार्मिक और मानसिक लुप्ति की आकाशाओं का अवार समा रहता था । इस यज्ञ-याज्ञ विधि का एकमात्र ज्ञाता और वर्तक ब्राह्मण माना जाता था ।

उनके प्राग्निहृत् जीवन के दिग्ग में कुछ भी नहीं मिलता । उनको जो 'निमग्नमायुत' कहा गया है वह भी गायना से भिन्न हो जाने पर केवलज्ञान की प्राप्ति के उप-
रान्त ही ।

जैन साहित्य में आत्म और आत्मवेद साहित्य उदात्त है । आत्म साहित्य के आधार पर ही उपरवान में महावीरचरित मनुष्य, प्राकृत, अवधन और द्वितीय मायाओं में निवेदने ।

दोनों परम्पराओं में उदात्त अवस्था उन्मिग्न मनुष्य महावीरचरित सम्बन्धी चर्चों को दिग्ग प्रचार के विमल विद्या का मन्त्र है—

विमलपर परम्परा माय्य प्रमथ

द्वेताम्बर परम्परा माय्य प्रमथ

(क) प्राकृत-अवधन प्रमथ

१. विमल परम्परा
(विमलपर, मन्त्रमय १५वीं पानी)
२. निमग्नमायुतमिग्नमायुतम
(पुनरुत्पन्न, पृष्ठ १०० ८८०)
३. महावीर चरित
(वर्णनित हस्त, १२वीं पानी)
४. महावीरचरित
(मन्त्रमय, वि० पृ० १२१२)
५. महावीरचरित (१२५५५, वि० पृ० १२०० के आधारे)

१. आधारेण
२. मन्त्रमय
३. टापीय
४. मन्त्रमय
५. उदात्तमायुत
६. व्याख्यात्मक
७. मन्त्रमय
८. आधारेण निर्दिष्ट
९. विमलपरपरम माय्य
१०. आधारेण चरित
११. चरितम महावीरचरित
(वीणावाचार्थ, वि० पृ० १२२)
१२. चरित चरित
(मन्त्रमय द्वितीय)
१३. महावीरचरित
१. मन्त्रमयमन्त्र (१२१० ई०)
२. मन्त्रमय (१०२० ई०)
३. देवमन्त्रमन्त्र (वि० पृ० १२१८)
१४. महावीर
(मन्त्रमय, १२वीं पानी)

(ग) मन्त्रमय प्रमथ

१. माय्यमन्त्रमय
(विमलपरमन्त्र)
२. विमलमन्त्रमयमन्त्रमय
(आधारेण देवमन्त्र)

विशाल नामक राजा द्वारा इसकी स्थापना की गई हो।^{१८} वैशाली (बिहार) जिसे अन्तर्गत विद्यमान आज का बसाड़ ग्राम प्राचीन वैशाली बताया जाता है। यह एक हमले भी प्रभावित होता है कि बसाड़ के उत्पन्नन में अनेक गुटों प्राण हुई हैं जिन का 'वैशाली' शब्द उत्पत्ति मिला है। यहाँ विशाल राजा का गड भी बनाया जाता है।

वैशाली महानगर के अन्तर्गत कुम्हणम अथवा कुम्हणपुर या त्रिसेने रोड से—क्षत्रिय कुम्हणुर और ब्राह्मण कुम्हणुर। प्राचीन काल में प्रायः वर्ण के आधार ग्रामों के साथ-उपग्राम बना दिये जाते थे। महावीर का जन्म क्षत्रिय कुम्हणुर में हुआ। धूँक समूचा नगर वैशाली के नाम से पुकारा जाता था अतः महावीर को जैन मत में वैशालिय (वैशालिक) भी कहा गया है। 'वैशालिय' बड़े जाने का कारण यह है कि उनका कुल और प्रवचन आदि विशाल और प्रभावक थे।^{१९} वैशाली उस समय मगध का भाग न होकर विदेह का ही भाग था। इसलिए महावीर को बिदेहि और महावीर की माता विशाला को बिदेहदत्ता कहा गया है।

इसी वैशाली के पास कोल्लाम समिवेश, कर्मारग्राम, बलिग्राम, आदि श्रृङ्ग ग्राम और नगर भी थे जिनका बिलोप सम्बन्ध भगवान महावीर के जीवन से रहा है। जिसे उस समय कर्मरिग्राम कहा गया आज यह कम्मन-छपरा के नाम से प्रसिद्ध है। जिसे उस समय कोल्लाम कहते थे उसे आज कोल्हूआ कहा जाता है। यहाँ एक श्रृङ्ग स्तम्भ भी मिला है। प्राचीन कुम्हणुर आज बसाड़ के पास बना वामुकुम्ह कहा श्रृङ्ग सचता है।

वैशाली के आसपास एक जयारिया नामक जाति रहती है जो अपने को महावीर का वंशज बताती है। यह सम्भव भी है क्योंकि जयारिया शब्द मान्युत के 'नात' शब्द से आया प्रतीत होता है।

वात्स्यायना

वात्मक बडमान का मानन-पालन राजद्वारी टाट-बाट से हुआ। वचचारितो की वेलरेण में उसका शारीरिक और मानसिक विकास अहमिता वृद्धिगत होने लगा। उसकी बालक्रीडायें भी हृदयहारी और सौम्य थी। वह निर्भय और साहसी था। एक बार वात्मक बडमान अपने समवयस्क मित्रों के साथ सतुसी (आम) में खेल रहा था। मित्रों में काकधर, धनधर और यक्षधर नामक राजकुमारों। उन्मत्त भला है।^{२०} इस खेल में जो बालक सर्वप्रथम वृक्ष पर चढ़ जाता और नीचे

वात्मीकीय रामायण, आदिवाण्ड ४७ ११-१२; भागवत पुराण ६-२-३३

विशाला जननी यस्य विशाल कुसमेव वा।

विशाल प्रवचन काय तेन वैशालिको जिन ॥

बडमान पुराण—चामुण्डगमकृत (कर्मरि ग्राम), पृ० २६१ मुनि विद्यानन्द।

१०. श्रीरामान जैन—भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान।

उत्तर आता, वह पराजित बालकों के बगनों पर बैठकर उस स्थान तक जाता है जहाँ से दोह प्रारम्भ होती है। उस समय बालक बड़मान लेन लेन रहा था कि अचानक एक विकरास भीमकाय तर्प वृक्ष पर आ गया। मन्त्री बालक को भयभीत होकर भाग गये हुए पर बड़मान ने उसकी पूँछ पकड़कर उसे बहुत दूर फेंक दिया। इसे 'आमलप मेह' कहा गया है। यह घटना राजा के नानों तक पहुँची। आमक की निर्भयता और वीरता का यह एक विनिष्ट प्रमाण था। इसलिए राजा ने बड़मान का अपर नाम 'महावीर' रत्न दिया। महावीर के अतिरिक्त बड़मान के सम्मति, वीर और अनिवीर नाम भी मिलने हैं। इन नामों के पीछे भी इसी प्रकार की कुछ घटनाएँ सम्बद्ध हैं। बालक के इन नामों से बड़मान और महावीर नाम अधिक प्रचलित हुए।

उक्त घटना के पीछे मयमदेव की भूमिका बनायी जाती है। उसने महावीर बड़मान की सापना बाल में भी अनेक प्रकार से बटोर कट दिए। आगामी श्रीवा का वर्णन मयुरा गिर्य में उपलब्ध हुआ है। महावीर की ज्ञान-वीणाओं का और कोई महत्वपूर्ण प्राचीन उल्लेख हमारी दृष्टि में नहीं आया।

शिक्षा-वीक्षा

महावीर ने अपनी मेधावी प्रतिभा के बल पर बहुत शीघ्र ही ज्ञानार्जन कर लिया। जैन परम्परा के अनुसार वे जन्म से ही मनिज्ज्ञान, व्युत्तज्ञान और अवधितान के पारी थे। अतः किसी आचार्य के नाम उनकी शिक्षा-वीक्षा मात्र व्यावहारिक थी। आचार्य जिनसेन के अनुसार सत्रयन्त्र और वित्रयन्त्र नामक मुनियों ने तो उनके दर्शन करके ही अपनी शपायें दूर कर लीं। जो भी हो, यह निश्चित था कि महावीर किमो-रावस्था में ही अपूर्व प्रतिभा के धनी, विद्वान और चिन्मक हो गये थे। यह आश्चर्य का विषय है कि उनकी शिक्षा-वीक्षा के सम्दर्भ में विस्ताराला में गमन तथा इन्द्र के माय प्रत्यक्षों को छोड़कर कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलने।

गार्हस्थिक जीवन

राजकुमार बड़मान गृहस्थावस्था में रहते हुए भी मोक्ष-वासनाओं से अनिष्ट थे। समार की गहनता और अगारता का अनुभव उन्हें हो चुका था। आध्यात्मिक चिन्तनशीलता अहनिश बढ़ती चली जा रही थी। इसी अवस्था में उनके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा गया। स्वभावतः वे इसे कैसे स्वीकारते? माना-विना का स्नेह-आग्रह और भेद-विज्ञान की प्रकर्षता इन दोनों स्थितियों में सामञ्जस्य कैसे स्थापित किया जाय—यह विकट समस्या महावीर के सामने थी।

इस सम्दर्भ में दो परम्पराएँ उपलब्ध होती हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर ने अन्त में अविविहित रहने का निर्णय लिया। पर श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इस परिस्थिति में उन्होंने विवाह करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फलतः वसन्तपुर के महामामन्त समरवीर की प्रिय पुत्री यशोदा के साथ शुभ मुहूर्त में उनका पाणिग्रहण सम्पन्न हो गया। कालान्तर में वे एक पुत्री के पिता भी हुए जिसका

੨੪ ਸਾਧਨ ਸਤਗੁਰੇ ਸੀਰ ਪਾਠ ਵਿਚ

ਇਹ ਸਤਗੁਰੇ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਤੇ ਸਾਧਨ ਸਤਗੁਰੇ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ
 ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ

ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ
 ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ
 ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ
 ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ ਸਾਧਨ ਦੇ ਸਾਧਨ

महाभिनिष्क्रमण : श्रन्तज्ञान की खोज में

- १ महाभिनिष्क्रमण
- २ दूरस्थी नायक और विनिष्ट घटनाएँ
- ३ दूरस्थी नायक और वर्तमान
- ४ गोपनीयता का उपसर्ग
- ५ कल्पित प्रतिकार
- ६ सुलभाविहृत उपसर्ग
- ७ दूरस्थी नायक अविच्छिन्न
- ८ विनिष्क्रमण : प्रभावकारिता
- ९ चन्द्रचौकिक तर्क : एक विच्छिन्न
- १० मयकाली गोपनीयता से भेद
- ११ वास्तविकता साधुओं से भेद
- १२ अग्नि उपसर्ग
- १३ अनाथ देशों में अज्ञान
- १४ गोपनीयता से वास्तविकता
- १५ दूरस्थी नायक का उपसर्ग
- १६ लोहात्मक उपसर्ग
- १७ अनाथ देशों में अज्ञान
- १८ गोपनीयता का सुनिश्चित
- १९ तत्त्व प्रति उपसर्ग
- २० संगमरुत उपसर्ग
- २१ कठोर अभिप्राय
- २२ गोपनीयता उपसर्ग
- २३ कर्मकालिका निष्क्रियता उपसर्ग
- २४ सुखी तप
- २५ वेदविवेक की प्राप्ति

महाराज और उनका विमान

उनके लिए 'मुक्ति' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।^१ ये दोनों शब्द महावीर को का-
के दिग्दर्शन हैं। गृह त्याग करने व उपास्य माघर महावीर के वनवास की शक्ति
निमित्त मगध का यह वर्ष तक मनन माघरा करते रहे। इसी काल को छद्मस्थ
गया है। दिग्दर्शन परमेश्वर के शक्तियों व महावीर के इस छद्मस्थ जीवन पर वि-
प्रकाश नहीं डाला गया। उत्तरपुराण में माघ वृत्तीत वर्षाओं (३१७-३१९) के
वर्णन को पूरा कर दिया गया। जबकि स्वर्णामार परमेश्वर व हेमचन्द्र ने इसके वि-
समूचे दो तर्ग (५६५ + ६५८ = १२२३ श्लोक) समर्पित किये। उत्तरपुराण में महारा-
ज के उत्तरार्ध और शब्दना के मिश्रादान का ही वर्णन मिलता है। महावीर के वि-
भ्रमणादि का कोई उल्लेख नहीं है। इस स्थिति में आचार्य आदि शक्तियों में शक्ति
उनकी कठोर साधना पूरक दृष्टि व उपलब्धी नहीं है।

छद्मस्थकाल और वर्षावास

ठाणामग्न में महापद्मस्थिति के प्रगम व महावीर के विषय में विना ही
उन्होंने तीस वर्ष गृहस्थावस्था में, बारह वर्ष तेरह पक्ष केवलज्ञान प्राप्ति में और
पक्ष नाम तीस वर्ष धर्म प्रकार में बिताये।^२ तदनुसार महावीर ने महापद्मस्थिति
लेकर केवलज्ञान प्राप्ति तक छद्मस्थावस्था में त्रिन स्थलों में बिहार और वर्षा-
किया, उनका सन्निधित्व विवरण इस प्रकार है—

(बुद्धग्राम, कमरिग्राम (चम्मन-ग्राम), कोन्हाय सन्निवेश, मोरक शक्ति
वेरा, मातवग्दवन, दुदग्जवन, अस्थिक ग्राम (वर्षावास)।
२ मोरक सन्निवेश, दक्षिण-उत्तर बाबाता, मुरमिपुर, स्वर्णाम्बी, तर्ग-
नालगवा (वर्षावास)।

३. कोरलाय, मुवर्णमिल, बाह्यग्राम, चम्पा (वर्षावास)।
४. कालाव, पन्त, कुमारक, चौराक, वृष्ट चम्पा (वर्षावास)।

५. कययला, हस्तिदुय, आवर्त, कलकनुका, पूर्णकला, भावस्ती, नवला,
(साठ) देश, मलय, मदिल (वर्षावास) (बैशाली के पास)।
६. कदम्बी, तवाय, बुधिय, बैशाती, जम्बूनद, कुणिय, ग्रामाक, मदिया (व-
वास)।

७. मगध, भलमिया (वर्षावास)।
८. दुश्शार, वहुमानग, मोहामला, गोभूमि, मर्दन, शालवन, पुषिया

उन्नाय, राजगृह (वर्षावास)।
९. आचार्य ६, १, ६.२०
१०. ठाणामग्न, ६.३.६६३, वृत्ति पु० ५६१/१, धवला में महावीर का कर्म

२६ वर्ष ५ माह और २० दिन निवास है।

॥ साङ्ग-वयभूमि, शुभ्रभूमि, (वर्षावाग यही के वृक्षों और गन्धहरों में हुआ ।)

१०. कुमारीग्राम, सिद्धार्थपुर, वैशाली, वाणिज्यग्राम, धावरी (वर्षावाग) ।

११. मानुनदित्य, हृष्टभूमि, मोननि, सिद्धार्थपुर, वयनाक, आनमिया, रवेग्राविका, नारायणी, मिथिला, मलय, वीणावती, रात्रवृद्ध, वैशाली (वर्षावाग) ।

१२. मुमुक्षुमारपुर, नन्दिग्राम, वीणावती, मेदिनीग्राम, सुमनस, मुद्दिता, पाणव, जम्पा (वर्षावाग) ।

१३. जमिय, मेडिय, छन्मागि, मय्यमगावा, जमियग्राम ।

त्रिदिष्ट घटनाएँ

गोपालक का उदय

१. महाभिनित्यक्रमण का मायक महावीर कुमारीग्राम पहुँचे और उनके बाहर जंगल में एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर आत्मसाधना करने लगे । माधना में इतने लीन हो गये कि दृष्टिपथ में आयी वस्तु का भी संस्कार उनके चित्त को प्रभावित नहीं कर सका ।

उसी समय एक घटना हुई । गाँव के किसी शस्त्र (गोपालक) ने अपने बेल करने के लिए वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होकर बेल निकाला । बेल निकालने पर उसे बेल नहीं दिशाई दिये । बेल तो करने-करते कुछ दूर निकल गये थे । शस्त्र ने ध्यानस्थ महावीर से पूछा—“हमारे बेल नहीं है ?” उत्तर न पाकर वह स्वयं उन्हें लोचने चल पड़ा । दक्षिण में वे बेल प्राप्त करके वापस आकर महावीर के पास ही बैठ गये । इतने में शस्त्र आया और वहाँ अपने बेल गाकर महावीर के प्रति क्रुद्ध हो गया । उन्हें और समझकर वह मारने लगे । अचानक वहाँ से एक मन्त्र प्रकट हो गया । उसने उस शस्त्र को रोका और कहा—“तुम निष्पत्तिही व्यक्ति को तुम्हारे बेलों से क्या प्रयोजन ? यह तो आत्मवत्प्राप्ति के साथ जगत् का वत्प्राप्ति करने के लिए माधना में लीन है ।”

इस मन्त्र प्रकट का उत्प्रेरक साहित्य में दक्षिण के रूप में किया गया है । उसने महावीर से कहा यदि आप चाहें तो मैं आपकी अपनी सेवाएँ देने के लिए तत्पर तैयार हूँ । महावीर ने उत्तर दिया—व्यक्ति दूसरों के बल पर केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता । उसे अपने ही बल पर उसे प्राप्त करना पड़ता है—

नापेक्षं शक्तिरेष्टतः परसाहायिकं शक्तिम् ।

केवल केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति स्वधीयतः ॥

स्वधीयैर्बलं शक्नुवन्ति जितेन्द्राः परमं पदम् ॥

वह उत्तर सुनकर वह मनुष्य कभी इन्द्र बड़ा प्रभावित हुआ। महावीर के आहूतों से भी निपट्टिगताकापुरुषचरित के अनुगम करने मित्रार्थ नामक एक महारथ को उनके मर्यादा के लिए नियुक्त कर दिया। दंग मित्रार्थ को बड़ा एक व्यन्तर देखा है।

आचार्य और बन्धुगुप्त ने दंग के बाद की गई उनकी तपस्या का शिवानुवर्तन किया है। महावीर अत्यन्त अवस्था में थे इसलिए उन्हें धीन, उष्ण, दशमगात्र आदि की वाधाओं से बचना पड़ा। भोगवानना ने पौष्टिक महिमाओं का भी उनसे खोराक आकषित होना मट्टन ही था। निर्मोही महावीर इन सभी प्रकार की बाधाओं से निर्दोष भाव से सहते हुए विचरण करते रहे।

कठोर तपस्या का अभिरूप

मोराक सन्निवेशवर्ती 'दूर्ध्वजन्तक' नामक पापवृद्धि आश्रम का कुलपति राम मित्रार्थ का मित्र था। कुलपति को अभ्यर्थना पर महावीर ने अपना बर्णवान भी करने का निश्चय किया। महावीर की कठोर निष्ठा की साधना देखकर आश्रमवासी दाँतो तले अंगुली दबाने लगे। संयोगवश उस वर्ष पर्याप्त वर्षा न होने के कारण वनस्पति, घास आदि पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं हुई। कमल' बाँधे आकर वर्षा की घास लाने लगे। आश्रमवासी उन्हें हटाकर अपनी वर्णकुटियों की रक्षा करने पर निष्परिग्रही महावीर ने कभी ऐसा नहीं किया। वे तो अपने ध्यान में रत रहते रहे। आश्रमवासी ने इसकी निन्दा करते कुलपति से की। कुलपति ने महावीर के बड़ा कि कम से कम आपको अपनी वर्णकुटी की रक्षा तो करनी ही चाहिए। महावीर कुलपति के आपह से सहमत नहीं हो सके और उन्होंने वहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने यह निश्चय इसलिए किया कि वे किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते थे। वे तो पूर्ण समभाव थे। प्रस्थान करने के पूर्व साधक महावीर ने निम्नलिखित पाँच प्रतिज्ञायें कीं।

१. अतीतिवारक स्थान में वास नहीं करूँगा।
२. सदैव ध्यानस्थ रहूँगा।
३. मोनव्रती रहूँगा।
४. पाणितल में भोजन ग्रहण करूँगा। और
५. गृहस्थों का विनय नहीं करूँगा।

६. निपट्टिगताकापुरुषचरित, १०, ३, ३३
७. नागीनिमद्गृहे नाम. स्वयं प्रतिभया सह।
८. न नेद्विनिम बाधों मोन पाणो च भोजनम् ॥

शुद्धाभिप्रेत उपरान्त : एक प्रविष्टोप

मोरावगमिनेन से विहार कर महावीर अतिथिगम पहुँच और वहीं के अनुमति लेकर शुद्धाभिप्रेत के आश्रम में टहर गये । कहा गया है, एक समयाभी बैस, तिसरी मेवा-गुप्ता की ओर दामधामियों ने उल्लास दिया, घर-घर बस हो गया था और वहीं उन गद की सत्ता था । उन्हीं के सम्मान में दामधामियों ने यह मन्दिर बनवाया था । बिहट सिद्धि देगदर लोगों ने महावीर को वहीं टहरने के लिए मना किया, फिर भी वे उन्हीं मन्दिर में ध्यानस्थ हो गये । निवसानुसार रात्रि में बस आया और उमने महावीर को विविध प्रचार से तीव्र कष्ट दिये । परन्तु वे साधना-व्यस से विचलित नहीं हुए । इस घटना से बस को बड़ा आश्चर्य हुआ । अन्त में उमने प्रवचन में क्षमा माँगी और पश्चात्ताप करने लगा । पञ्चमः महावीर ने उमने प्रविष्टाथ दिया—“तू आत्मा को पहचान । आत्मबन्ध मानकर किसी को कष्ट न दे । इन पापों का फल बड़ा दुःसादी होता है ।” बस ने प्रवचन को आज्ञा महर्षि की ओर नमस्कार होकर वहीं से चला गया ।^५

बस वचन . प्रविष्टोप

उस समय सबसम एक मुक्त रात्रि देव थी । महावीर ध्यानस्थ लगे थे । फिर भी शनकर के लिए उन्हें निद्रा आ गई । इस बीच उन्होंने निम्नलिखित वचन वचन देगे—

१. साधन विनाश को रकड़ अपने हाथ से विनाश ।
२. ब्रह्म पुण्योक्ति का सेवा में उपस्थित होता ।
३. विविध वर्णवासा पुण्योक्ति सामने दिखाई देना ।
४. शुद्धाभिप्रेत दो पुण्यमात्रों दिखाई देना ।
५. ब्रह्म गो-गुप्ता देखाई देना ।
६. विविध वस्त्र महोदर का दर्शन ।
७. बस की महासमुद्र पार करते देखना ।
८. दिनकर विरगो की चैतने हुए देखना ।
९. अपनी अर्धों से मानुषोत्तर पर्वत को बेधित करते हुए देखना, और
१०. बस की मंद पर्वत पर चढ़ने हुए देखना ।

अतिथिगम में ही एक उत्तम नामक निमित्तज्ञानी था जो पार्श्वनाथ परम्परा का अनुयायी था । सत्तामन में महावीर के टहरने का समाचार सुनकर वह अनेक आश्रमों की सम्मानना से चिन्तित हो उठा । प्रातःकाल होते ही वह इन्द्रगमा नामक पुत्रा की माय भगवान महावीर के दर्शन करने आया । साथ ही बड़ा मारी

महावीर और जाका विमल

जनममुदाय भी था । महावीर को मृत्युका पाकर सभी को आश्चर्य और प्रश्नचिह्न हुए । निमित्तज्ञ जन्म न महावीर के स्वप्नों का फल प्रत्यक्ष रूप प्रसार बनाया—

- १ आप मोक्षनीय कर्म का विनाश करेंगे ।
- २ आपने भुक्त्वा ध्यान की प्राप्ति होगी ।
- ३ आप विविध ज्ञानार्ण्य साधनाय भुक्त की प्रवृत्ति करेंगे ।
- ४ चतुर्थ स्वप्न का फल उत्पन्न नहीं समझ सका ।
- ५ चतुर्थिय मघ की आप स्थापना करेंगे ।
- ६ चारों प्रसार के देख आपकी सेवा में उपस्थित रहेंगे ।
- ७ आप समस्त गागर को पार करेंगे ।
- ८ आप केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- ९ आपकी कीर्ति वितरित में व्याप्त होगी, और
- १० सिंहासनारुह होकर आप लोक में धर्मोपदेश करेंगे ।

महावीर ने स्वप्न बनाया कि मैं दो प्रकार के धर्म का प्रथम कल्पा—आकाश धर्म का कार्य महावीर की दृष्टि में था ।

निमित्तज्ञान : प्रभावशाली

२ सायक महावीर अस्थिग्राम में प्रथम वर्षावाग समाप्त कर मार्गशीर्ष पूर्णिमा । प्रतिपदा को मोराक सन्निवेश पहुँचे । वहाँ वे नगर के बाहर के उद्यान में टहरे । वन में एक अच्युन्दक नामक पान्थड़ी ज्योतिषी रहता था । उसकी आजीविता का साधन ज्योतिष ही था । उस समय निमित्तज्ञानी का बहुत आदर-सम्मान होता था । अच्युन्दक महावीर के आध्यात्मिक सेवा में उसने अनेक दुष्प्राप करना प्रारम्भ कर दिया । महावीर के आध्यात्मिक सेवा में उसने अनेक दुष्प्राप करना प्रारम्भ कर दिया । अच्युन्दक का प्रभाव उसके मन में जाता रहा । समूचा नगर उनकी पूजा करने लगा । महावीर के पास आया और साधन विरोधित होने लगा । तब असाहाय होकर वह महावीर के पास आया और कहने लगा—“पर! आपने उपस्थित रहने से मेरी आजीविता समाप्त-प्राप्त हो रही है । आप तो निश्चयी हैं । यदि आप यहाँ से चले जावें तो मेरा क्याण हो जावेगा ।”

अनः दयामु महावीर ने वहाँ से प्रस्थान कर दिया और अन्य ध्यानस्थ ।

मोराक सन्निवेश से महावीर मुक्तामूला और कप्यमूला नदी के ।

१ आकाश धर्म, प्रथम भाग, पृ० २७५

रक्षक बिनकन्य हीता कारण कर ली । साधनाकाव में ही दूध आरक्षण पुत्र ने उन्हें लम्बर समझकर उनका अन्न कर दिया । शुभ वृत्तियों के कारण उन्होंने उनी जगम में निर्वाण प्राप्त कर लिया ।^{१३}

अग्नि-उपसर्ग : बटोर साधना

२. हस्तिदुष्ट में साधक महावीर एक हस्तिदुष्ट नामक वृद्ध के नीचे कापोलण में स्थित हो गये । उनी वृद्ध के नीचे कुछ और भी व्यक्ति टहरे हुए थे । वे रात्रि में आग जलाकर सीत से बचते रहे और प्रातः काल उमे बिना बुझाये ही वहाँ से चले पड़े । समय से वह आग फैल गई और उसकी लपटों में महावीर के पैर जल गये । फिर भी वे विचलित नहीं हुए ।^{१४}

अनाथ बेटों में भ्रमण : समभावशीलता

इसके बाद साधक महावीर के मन में बड़ा विचार आया कि विहार भूमि तो उनी परिचित है । ऐसे स्थान पर क्यों न जाया जाय जहाँ कि उनका कोई परिचित ही न हो । ऐसे अपरिचित स्थानों पर ही साधना-उद्योग में चमक आ सकती है और कर्मों की निर्मला हो सकती है । यह सोचकर महावीर ने साइ देग में जाने का निश्चय किया । यह देग उस समय अजस्रक और अजस्र था । इन्द्रिय-साधारणतः वहाँ मुनियों का विहार नहीं होता था । इस दृष्टि से महावीर का वहाँ विहार विशेष महत्त्वपूर्ण था ।

महावीर साइ देग पहुँचे लगभग वहाँ उन्हें अनुकूल भोजन और आश्रम भी नहीं मिला था । वहाँ के लोग उन पर कुछे दोष देने, लाटियाँ मारने और उन्हें पगोटते । इन सभी उपमर्शों को महावीर का समभावशील अतिशय सह्य सहन करता रहा । उन्हें न आहार का लोभ था, न शरीर से मोह और न किसी प्रकार की विषय-वासना की इच्छा । इसलिये बीनगामी होकर सभी प्रकार के उपमर्श सहन करने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं हुई ।^{१५}

गोपालक से पार्यवय : आवश्यकता की अनुसूति

३. भ्रमण करते हुए साधक महावीर ने बैसाली की ओर गोपालक ने उनसे कहा—“तुमने आरक्षे कारण बहुत दुःख सह्य सह्य है कि मैं आपसे पृथक् बना रहूँ ।” महावीर ने जवाब दिया : पार्यवय हो जाने पर महावीर बैसाली राजगृह जा पहुँचा ।

मवलति गोशालक से भेंट एक नया अध्याय

साधक महावीर एक बार तन्नुवायशाला में ठहरे हुए थे। मन्निपुत्र लोग भी वही स्था हुआ था। एक बार गोशालक के पुछने पर महावीर ने बताया कि मुझे आज मिठा में कोदो का वासा चावल (मात), खट्टी छाद्य और मोटा हाना मिलेगा। अनेक प्रयत्न करने पर भी गोशालक को मिठा में यही सब कुछ मिला। इस घटना से वह नियतिवादी बन गया।^{११}

इस पर महावीर पारणा लेकर नालन्दा से कोल्लाम सन्निवेश पहुँचे। वहाँ बुद्ध नामक ब्राह्मण के घर आहार लिया। गोशालक भी महावीर को सोखने-पोंखे कोल्लाम पहुँच गया और वहाँ उसने उनका सिध्दस्व स्वीकार किया।^{१२}

इसके पश्चात् छह वर्ष तक गोशालक अविरत रूप से महावीर के साथ रहा। इस बीच अनेक ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे गोशालक का विश्वास नियतिवाद पर टूटता होता गया और अन्ततः वह पौर नियतिवादी हो गया।

३. कोल्लाम सन्निवेश से बिहारकर महावीर सुवर्णगत पहुँचे। मार्ग में कुछ स्थानों पर पड़ा रहे थे। गोशालक ने कहा—‘रुबिरे, हम लोग मोर माकर चलेते हैं।’ महावीर ने कहा—‘यह मोर पक नहीं पायेगी। उसके पकने के पूर्व ही हाँसी पड़ जायेगी।’ महावीर की यह मूर्खमान्यता शक्ति का प्रदर्शन था। अनुमान सही निश्चय।

४. महावीर के साथ रहते हुए भी गोशालक की कृतियाँ शान्त नहीं हुई थी। वह जोषी और रागी प्रकृति का था। इसलिए उने अनेक स्थानों पर अपमान भ करना पड़ा। कभी वह महिलाओं से छेड़-छाड़ करता तो कभी परमत्तावलम्बी पार्ष्ण वरुणानुयायी साधुओं और ध्यातुओं से झगड़ पड़ता। इसलिए जनसमुदाय का बर्बरतापूर्ण साधुओं से भेंट पुरातन परम्परा का एकीकरण

बुद्धिमान सन्निवेश में पार्ष्णताप वरुणरा के सम्मानीय साधुओं से गोशालक की भेंट भेंट हुई। महावीर तो उद्यमान में ही ध्यानस्थ रहे पर गोशालक की भेंट में निःसन्ध। बड़ी विविध वस्त्र पहने पार्ष्णताप वरुणरा के साधुओं से गोशालक की भेंट और उनसे विवाद होने पर गोशालक ने उपाध्यक्ष अपने जाने का आग्रह भी किया।^{१३}

महावीर ने भी उनकी भेंट हुई और वे बड़े प्रसन्न हुए। सम्मानीय साधुओं के प्रश्न-जाँच-सूचक से तो उगी समय अपने मुख्य सिध्द को बर्बरतापूर्ण मोर

११. महावीर जैन, प्रथम भाग पृ० २८३
१२. महावीर जैन, १, २, ४६
१३. महावीर जैन, १, २, ४६

स्वयं त्रिनक्षत्र दीप्ता वारण कर ली। साधनाकाश में ही एक आरक्षण पुनः ने उन्हें सम्भर समझकर उनका अन्न कर दिया। मुनः वृत्तियों के कारण उन्होंने उगी जगत् में निर्वाण प्राप्त कर लिया।^{१३}

अग्नि-उपसर्गः : बठोर साधना

५. हस्तिद्वय में साधक महावीर एव हस्तिहम नामक वृक्ष के नीचे कायोर्गण में स्थित हो गये। उगी वृक्ष के नीचे वृक्ष और भी व्यक्ति टहरे हुए थे। वे रात्रि में आग जलाकर शीत से बचते रहे और प्रातः काम उसे बिना बुझाये ही वहाँ में बन पड़े। मंगोय से बहु आग पैदा हुई और उसकी सपटी में महावीर के पैर झुलम गये। फिर भी वे बिचलित नहीं हुए।^{१४}

अनार्य देशों में भ्रमणः सप्तमावलीलता

इसके बाद साधक महावीर के मन में यह विचार आया कि बिहार भूमि तो उनसे परिचित है। ऐसे स्थान पर क्यों न जाया जाय जहाँ कि उनका कोई परिचित ही न हो। ऐसे अपरिचित स्थानों पर ही साधना-ज्योति में चमक जा सकती है और कर्मों की निर्मला हो सकती है। यह सोचकर महावीर ने साठ देश में जाने का निश्चय किया। यह देश उस समय अनसूत और अनस्य था। इसलिए साधारणतः वहाँ मुनियों का बिहार नहीं होता था। इस दृष्टि से महावीर का वहाँ बिहार विशेष महत्वपूर्ण था।

महावीर साठ देश पहुँचे परन्तु वहाँ उन्हें अनुकूल भोजन और आवास भी नहीं मिल सका। वहाँ के लोग उन पर कृते छोड़ देने, भाटियाँ मारते और उन्हें घसीटते। इन सभी उपमर्गों की महावीर का सप्तमावलीन श्रुतित्व सहर्ष सहन करता रहा। उन्हें न आहार का भोग था, न शरीर से मोह और न किसी प्रकार की विषय-वासना की इच्छा। इसलिए बीनगामी होकर सभी प्रकार के उपमर्ग सहन करने में उन्हें विशेष कठिनाई नहीं हुई।^{१५}

गोशालक से पार्थक्यः आश्रयता की अनुभूति

अनार्य देशों से लौटकर भ्रमण करते हुए साधक महावीर ने वैशाली की ओर बिहार किया। मार्ग में ही गोशालक ने उनसे कहा—“मुझे आपके कारण बहुत दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः अधिक अच्छा यही है कि मैं आपसे पृथक् जाता रहूँ।” महावीर ने उसके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पार्थक्य हो जाने पर महावीर वैशाली की ओर चल पड़े और गोशालक राजगृह जा पहुँचा।

१३ आवश्यक पूर्णि, भाग १, पृ० २८६

१४ वही, पृ० २८८

१५ आचारण, ६, ३, ४-५

मगधान महावीर और उनका निगम

उत्तमकी और मगधों के बीच उनका यह अनागत आश्चर्य, मित्र और पत्रों से बन गया। प्रतिज्ञा के विषय में मित्रों को भी जानकारी नहीं थी। अमिषह को दिये हुए पाँच माह पञ्चमीय दिन ख़रीद हो चुके थे।

सोमवसन महावीर मित्रा के लिए पनागह में ड के घर पहुँचे। वहाँ रात्रि के लिए हुए मित्रों अतिथि की प्रतीक्षा में थी कि उगे तेजस्वी तारासी महावीर आते दिये। महावीर का अमिषह अभी पूरा नहीं हुआ था। इसलिए जैसे ही वे शानि से लगे कि चन्दना की आँखों में आँसू आ गये। गायक महावीर की प्रतिज्ञा अब पूरी हो चुकी थी। उन्होंने चन्दना के हाथ से पारणा कर ली। चन्दना भक्त व्यक्तियों के कण्ठ का द्वार बन गई। यही चन्दना राजागण्ड से मगधान महावीर को साक्षी हुई।

गोपालक उपसर्ग

१३ एक बार छम्माणि के ब्राह्म उद्यान में महावीर ध्यानस्थ थे। वहाँ समस्त काल में एक श्वाला अपने बैल छोड़कर गति करता गया। लौटने पर उसे वहाँ ही दिखाई नहीं दिये। महावीर ने पूछने पर कोई उत्तर नहीं मिला। क्रुद्ध होकर उनको दोनों कानों में कर्म नामक घास की शालाकायें डाल दीं और उन्हें पत्थर से ठोक दिया कि वे परस्पर में भीतर मिल गईं। बाहर के शेष भाग को उसने तीव्रता से ताकि कोई उन्हें देख न सके। महावीर ने इस असह्य वेदना को भी धारिण्य सह लिया। १०

कर्णशालाका निष्कासन उपसर्ग

छम्माणि से महावीर मध्यम पावा पहुँचे। वहाँ मित्रा के लिए वे मित्रों नामक शनि के घर गये। मित्रार्थ उस समय अपने मित्र 'परक' नामक से बात कर रहा था। उन दोनों ने महावीर को देखते ही उनकी वेदना का आकार लिया। फिर महावीर उद्यान में आकर ध्यानस्थ हो गये। मित्रार्थ और न औपधियों के साथ महावीर को लोचते हुए उद्यान में पहुँके। उन्होंने उनकी ठीक माँस की भी और फिर साक्षात् से दोनों कानों की शालाकायें बाहर निकाल दीं। हविरयुक्त शालाकाओं के निकालने की तीव्र वेदना से महावीर के मुँह से एक तीक्ष्ण चीज निकली। बँध भरक ने पाथ पर सदोहण औपधि लगा दी और चन्दना काट बना गया।

आश्चर्य की बात है कि महावीर की तपस्या का प्रारम्भ भी श्वाले के : में हुआ और उनका अन्त भी श्वाले के ही उपसर्ग से हुआ।

आदमों के अनुसार महावीर ने माधवाचर्या में वादय उपसर्ग महे उनगे
अपम्य उपसर्ग बटुपना शालमी वा, अम्य उपसर्ग सैम्य वा और अष्ट उपसर्ग
हानों में कीनों के टोचने और निचाने आने वा वा ।^{१५}

सूर्य तप

इस प्रकार माधक महावीर द्दम्यक नाम में अम्य उपसर्ग महे वादय
हैं तब बटोर माधका में मने रहे । इस बीच उन्हें वहीं चोर समझा गया तो वहीं
दुनकर, वहीं सोयी तो वहीं सोयी, वहीं जानी तो वहीं अजानी । फलतः उन्हें गमी
रवार के उपसर्गों की जेबना पड़ा । माधक महावीर बीनरामी और महाजनी में ।
उन्हें किसी प्रकार का राम, हेल, मोह नहीं था । वे तो उत्तान, गुना, परंत, वृष का
अपोमाध, वीर्य, अष्टहृत् आदि एकाकी रचानों पर अपनी माधका में बल हो जाने
में और भीनरामी अम्यक सभी प्रकार की प्राकृतिक और अप्राकृतिक बाधाओं की महन
करने रहे ।^{१६}

माधकाबाल में महावीर को उचित आहार भी अम्य रह । प्रायः उन्हें
गिरम आहार मिलना दिने के निगूही होकर माधक बीर के अम्यकनाथे वृहत्
र लेने । मधुमे माधकाबाल में उन्होंने कुल ३४६ दिन आहार वृहत् दिया और
दिन दिन निर्वैतन उपसर्ग के समाधि । बल्यमूत्र (मूत्र ११६) में उनकी द्दम्यकनाथीन
रम्यका वा वर्जन इस प्रकार दिया हुआ है—

१. द्दम्यक तप एक
२. वीर्य दिन कम ३३ मागी तप एक
३. बालुमागिक तप भी
४. वैमामिक तप दो
५. माधे द्वैमामिक तप दो
६. द्वैमामिक तप दू
७. माधेमागिक तप दो
८. मागिक तप बारह
९. वाधिक तप बहुतर
१०. अम्यप्रतिमा एक दिन की
११. महाअम्यप्रतिमा चार दिन की
१२. गर्भनीम्य प्रतिमा दस दिन की
१३. द्दम्यक दो ती उन्नीस
१४. अष्टमम्यक बारह

१५ बल्यमूत्र ११६; आदम्यक जूलि, भाग १, पृ. ३२२ ।

१६ मागी मयाममीने वा वादय तप में महावीर । माधकाबाल, ६-३-८ ।

भगवान महावीर और उनका चिन्तन

१५ पारणा तीन सौ उनचाम दिन और
१६ दीदा का एक दिन ।

केवलज्ञान की प्राप्ति

समय गाढ़े बारह वर्ष तक तपस्या करने-करते गायक महावीर की अनुत्तर दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य में विमल होती गयी । तेरहवें वर्षाभोग में वे पावा से विहार करते हुए जमियघाम पहुँचे और वहाँ के बाह्य उद्यान में ध्या हो गये । साधना की यह चरमावस्था थी और उसका चरमावस्था भी । महावीर आराम अव पूर्णतः निश्चल हो चुकी थी । उनका राग, द्वेष, मोह समूल नष्ट हो चुका था । फलतः वैसाव शुक्ला दशमी को दिन के चतुर्थ प्रहर में श्रुतुडला नदी के तटवर्ती झालवृष के नीचे मोदोहिका आसनस्थान में महावीर को कैवल्य की प्राप्ति हो गई । उनके ज्ञानावरणीय, दर्शनारणीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मों हो गया । अब महावीर अर्हन्त, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये । वे समस्त सामस्त पर्यायों को एक साथ हस्तामलकवत् जानने-देगने लगे ।^{१०} यह उनके की अन्तर्गत शक्ति का प्रस्तुतन था । बौद्ध साहित्य में भी उनकी सर्वज्ञता के एकाधिक बार आये हैं ।^{११} वहाँ भी उन्हें गणी, गणाचार्य और तीर्थंकर का स्मरण किया गया है । कालान्तर में उनको भगवान बहुरर भी सम्बोधित जाने लगा । इन सभी शब्दों के पीछे भगवान महावीर के व्यक्तित्व की विशेषता धिरी हुई है जिन्हें हम अश्वीनार नहीं कर सकते । तीर्थंकर प्रभुति का परिणाम था ।

जमियघाम की अवस्थिति के गन्धर्वों से विद्वानों में मतभेद है । कायागमना^{१२} का कथन है कि प्राचीन लाट देश का जिनय भूमि प्राप्ति सर्वमान विहार के अन्त छोटा नागपुर द्वितीय के मानभूमि और मिहभूमि के समीप धारिया नामक ग्राम । जमियघाम होना चाहिए । यहाँ की बराबर नदी प्राचीन श्रुतुडला नदी होती है ।^{१३} मुनिवम्पाज विजयनो इस ग्राम की सम्प्रेक्षितपर से क्षिति में बारह की कर बाघोदर नदी के पास बने जमिय गाँव से मिलाते हैं ।^{१४}

हाँ, मैमिकर शास्त्री इन दोनों मतों को स्वीकार नहीं करते । वे मुद्दे के क्षिति की ओर दक्षिण सीमा की दूरी पर स्थित जमुई गाँव को जमियघाम का

१० जयचरित, भाग १, पृ. ८०, विशेष वर्णन ४ १७०१ ।
११ विमल में देखते, मैमिकर का कथन—Jainism in Buddhist Literature
कायागम, १६३२ ।
१२ भगवान महावीर ।
१३ जयचरित महावीर, पृ. २३० ।

है। यह स्थान वर्तमान त्रिवल नदी के तट पर है। यह नदी श्रुतुकुला का अपभ्रंश है। जमुई के दक्षिण में लगभग ४-५ मील की दूरी पर एक केवानी नामक ग्राम है, जो महावीर के केवलज्ञानोत्पत्ति स्थान की स्मृति को बताये रखने के लिए प्रतिष्ठित हुआ है। इस गाँव के समीप अञ्जन नदी बहती है जो श्रुतुपालिका अथवा श्रुतुवालिका होना चाहिए। जमुई से राजशृङ्ग लगभग ३० मील की दूरी पर है। सरिया से चम्पा और राजशृङ्ग की दूरी सौ-सवा-सौ मील से भी अधिक है। जमुई चम्पा के भी निकट है। अतः यह निश्चित है कि भगवान् महावीर का बोधि स्थान ऐसी जगह था जो राजशृङ्ग और चम्पा दोनों से ३०-३५ मील दूरी से अधिक न था। जमुई भी वज्रभूमि है। यहाँ भी पृथ्वी के नीचे पत्थर निकलते हैं, पहाड़ी स्थान भी हैं। 'त्रिवल' नदी का तटवर्ती प्रदेश है। जमीन पथरीली और ऊबड़-खाबड़ है।^{२४}

लगता है यही स्थान जूम्भिकग्राम होगा। श्रुतुकुला का अपभ्रंश 'त्रिवल' हो सकता है। भगवान् महावीर छद्माणि ने मध्यमपादा और मध्यमपादा से जूम्भिक ग्राम पहुँचे थे। यह छद्माणि जमुई और लिछुवाड अथवा लिच्छवाड के बीच बसा मिमिरिया गाँव हो सकता है। यहीं से मध्यमपादा होते हुए भगवान् जमुई ग्राम गये होते। अतः यही जमुई प्राचीन जूम्भिक गाँव होना चाहिए। ☆

धर्मचक्रप्रवर्तन : प्राणियों के कल्याण में

१. विद्वानों की शीघ्र में
२. प्राहुन : अविश्वसि का आचमन
३. मन्थर
४. इन्द्रमुनि
५. अग्निमुनि
६. वायुमुनि
७. व्यस
८. मुचर्मा
९. मण्डित
१०. भीमपुत्र
११. अक्षयित
१२. अक्षयभाना
१३. मेतार्थ
१४. प्रभात
१५. जगुनिध संघ की स्थापना
१६. धर्म प्रचार और सर्वाचार
१७. संघ प्रमाण
१८. परिनिर्वाण
१९. परिनिर्वाण का
२०. निर्वाण स्थल
२१. पादवर्माध और महावीर का शासन भेद

धर्मचक्रप्रवर्तन : प्राणियों के कल्याण में

विद्वानों की लोभ में

केवलजानी हो जाने पर सर्वज्ञ महावीर अर्हन्त बन गये । उन्होंने स्वयं के अनुभूतिमय जीवन-दशानं को संस्तरण से संतुष्ट जन-साधारण तक पहुँचाने का सद्य बनाया ताकि वह भी सदासक्ति आध्यात्मिक भावना कर संसार के इस जन्म-मरण के दुश्चक्र से दूर हो सके । इन दृष्टि से उन्होंने अपना धर्म-प्रचार (धम्मचक्करवर्तन) करना प्रारम्भ कर दिया । प्रथम देशनागान में जनसमूह उनके सर्वविरति वन ग्रहण रूप शम्भीर उपदेश को ग्रहण नहीं कर सका । इसीलिए सायब उसे 'अभाविता परिपद्' कहा गया है । इसलिए भगवान महावीर ने सर्वप्रथम अपनी बात कतिपय विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय लिया । बुद्ध ने भी अपना प्रथम धर्मोपदेश पञ्चवर्षीय भिक्षुओं को दिया था । आचार्य त्रिसेन से अनुसार पैंसठ दिनों तक महावीर की दिव्यवाणी प्रवृत्त नहीं हुई । त्रिसेन ने सर्वविरति महाव्रत ग्रहण नहीं किया । विष्णु देशाम्बर परम्परा के सभी ब्रह्मों के अनुसार उन्होंने द्वितीय दिन पावा में धर्मोपदेश दिया और तीर्थ की स्थापना की ।

विद्वान् विष्णु की लोभ में महावीर कुम्भिका ग्राम से मध्यमपावा पहुँचे । वहाँ आर्य सोमिल ने विराट वन का समायेजन किया था जिसमें अनेक स्थानों से प्रकाश पण्डित उपस्थित हुए थे । इस समय महावीर भी बहुजन परिचित हो चुके थे । पावा पहुँचने ही उनके भक्तों ने एक सुन्दर और सुव्यवस्थित विद्यामण्डप बनाया जिसे शास्त्रीय परिभाषा में देवरचित समवसरण कहा गया है । वहाँ बिना किसी भेद-भाव के सभी की समान रूप में बैठने का अवसर दिया गया । तात्कालिक सामाजिक विषम परिस्थिति में यह एक विशेष आश्चर्यक घटना थी । महावीर भगवान ने वहाँ बैठकर अपना दिव्य उपदेश दिया । दिग्म्बर परम्परा इस घटना को राजगृह (पंचवीनपुर) के विजुलाचल पर्वत पर घटित मानती है ।

प्राकृत - अभिव्यक्ति का साध्य

भगवान महावीर के उपदेश की भाषा जन-साधारण की थी जिसे अर्धभाषी भषा प्राकृत कहा गया है । संस्कृत तो अभिजात्य वर्ग की भाषा थी जो विशेष शिक्षित अथवा उच्च वर्गों और उच्च वर्गों तक सीमित थी । यह वर्ग संस्था में अल्पतर था ।

३६ भगवान महावीर और उनका विगत

इसलिए लोकाया सरकु न होकर प्राकृत थी। प्राकृत ही सर्वसाधारण भाषा
अभिप्रेति का साधन था। यही कारण था कि सभी श्रोतागण उनके उपदेश को
भाति समझ लिया करते थे। यह प्रथम समय था जबकि कृति ने लोकभाषा को
महत्त्व दिया। इन लोकभाषा का क्षेत्र उत्तर में वैशाली से लेकर दक्षिण में रा
और समय के दक्षिणी किनारे तक तथा पूर्व में राडभूमि से लेकर पश्चिम में क
की सीमा तक फैला था।

मगधपर

भगवान महावीर का व्यक्तित्व बहुत अधिक लोकप्रिय हो चुका था। वे विद्वानों
और मनीषियों में अग्रिम थे। उनके उपदेश सर्वसाधारण के भी अन्तर्गत हो
चुके थे। इसलिए वे जनसमुदाय के आकर्षण के केन्द्रबिन्दु बन गये थे। इन
स्थिति में यह आवश्यक था कि भगवान महावीर अपने धर्म-प्रचार के लिए अन्तिम
विशिष्ट विद्वानों को सिष्य बनायें जो उनके विद्वान्तो को समुचित रूप में
जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। इन्हीं सिष्यों को शास्त्रीय परिभाषा
कहा गया है।

महावीर स्वामी के इस प्रकार के ग्यारह वनपर बताये गये हैं—
अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुषर्मा, मण्डित, शीर्षपुत्र, अकम्पित, अक्षतभागा
और प्रमाण। ये सभी विद्वान महावीर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके वा
और अपने प्रदनों का समाधान पाकर उनके परम सिष्य बन गये।

१. इन्द्रभूति शीतम

मगधवर्ती शीतम नामक एक ब्राह्मण विद्वान रहता था। उ
लीन पुत्र थे—इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति। ये तीनों पुत्र भी वैदिक शास्त्रों
और त्रिपिटक के भूषण और प्रतिभाशाली वर अहमय पण्डित थे। वे अपने तन
और शरीर द्वारा ही विद्वान्ता की स्वीकार नहीं करते थे। उस समय यह त्रिपिटक
अधिक लोकप्रिय था। अध्ययनशास्त्र में इन्द्रभूति अपने सिष्यों सहित मार्ग सोपिन के
द्वारा धर्म का आधेयन करा रहे थे। भगवान महावीर भी कुम्भिनाराम से धर्म
पढ़ने और धर्म उद्यान में ध्यानस्थ हो गए।

आश्विन की रात को ही उन समुदाय याज्ञिक उत्सव की अवधि महावीर
के दर्शन करने में अधिक उत्साह दिया रहा था। इससे स्पष्ट है कि उन तब
नए त्रिपिटक की तब हीव चुकी थी। मगध सही मार्गदर्शन पाने के लिए शत्रु
था।

इन्द्रभूति के लिए भगवान महावीर की लोकप्रियता ईर्ष्या का कारण बन गई।
विचित्र वरदान के अनुसार इन्होंने ही एक नृत्य विद्वान् व्यक्तित्व को निर्माण
किया था।

पंचेव अतिविकाया छज्जीवनिकाया महध्वया पंच ।

अट्ठ य पवयणभावा सहेउओ बंध मोक्षतो य ॥

इन्द्रमूर्ति के लिए अतिविकाय, छज्जीवनिकाय, महध्वय, अट्ठपवयणभावा आदि परिभाषिक शब्द विनयुक्त नए थे । इसलिये विवेक होकर उन्हें उसमें यह कहना पड़ा कि मैं इस वाक्य का अर्थ तुम्हारे गुरु के समझ ही बताऊँगा ।

यहाँ बृद्ध दीप्य पद्मच्छादगम के अनुसार तो इन्द्र या पर अपने आपको तीर्थंकर या विद्वान मानने वालों की परीक्षा करने वाला कोई विनिष्ट व्यक्ति रहा होगा अथवा यह भी सम्भव है कि महावीर की देखना वहाँ तक तथ्य संगत है यह ज्ञात करने के लिए वह परिश्रम-भाग्य इन्द्रमूर्ति के पास पहुँचा हो ।

स्वेताम्बर परम्परा के अनुसार इन्द्रमूर्ति आदि पावा में विनिष्ट यज्ञ के आयोजन में जाये हुए थे । उन्होंने भगवान महावीर के विनिष्ट तैत्तिरीय अस्तित्व को देखकर उन्हें पराजित करना चाहा और वे क्रमशः भगवान महावीर से शास्त्रार्थ करने पहुँचे ।

महावीर के पास पहुँचने ही इन्द्रमूर्ति नीलम स्वतः हस्तप्रभ से होने लगे । समवधारणवर्ती मानस्तम्भ अज्ञानाश्रयकार को विवर्तित करने वाला प्रकाशस्तम्भ बन गया । महावीर ने स्वयं उसके हृदयाविष्ट प्रयोगों को उसके समझ रखा । इन्द्रमूर्ति की आत्मा के अस्तित्व के सन्दर्भ में विशेष जगह थी । उसका पक्ष था कि आत्मा घटादि पदार्थों के समान प्रत्यक्ष नहीं है । वह अनुमानगम्य भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अनुमान भी प्रत्यक्षपूर्वक होता है । आत्मा आगमगम्य भी नहीं है क्योंकि अनुमान के बिना आगम की सिद्धि नहीं होती । अदृष्टार्थ विषयक मरक, स्वर्ग आदि की सिद्धि का भी अनुमान ही मूल कारण है तथा तीर्थंकरों के सभी आगम परस्पर विरोधी हैं अनएव आत्मा के अस्तित्व के विषय में सत्य ही उत्पन्न होता है ।

भगवान महावीर ने नीलम इन्द्रमूर्ति के उक्त संदेह को दूर करते हुए कहा कि आत्मा प्रत्यक्ष है क्योंकि स्वसंवेदन-सिद्ध जो सद्यसादि विज्ञान तुम्हारे हृदय में प्रस्पृष्टित हो रहा है वह विज्ञान ही आत्मा है । और जो प्रत्यक्ष है वह प्रमाणान्तर द्वारा साध्य नहीं अथवा अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं । जैसे स्वकारीर में ही सुख-दुःखादिक आत्मसंवेदन मिद्ध है तथा जानता है, बोलता है, करता है, इत्यादि प्रकार से जो यह त्रैकादिक कार्य व्यपदेन है उसमें रहने वाले वह प्रत्यक्ष से भी आत्मसिद्धि होती है । जिसे आत्मनिश्चय का सद्य होना, वह कर्मवन्ध मोक्षादिक के विषय में भी सद्यमान रहेगा । स्मृति, जिज्ञासा, चिन्तार्थ आदि गुणों का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होने से घट जैसे आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष मिद्ध होता है । यदि गुणों से गुणी को अनर्णान्तर-भूत माना जाय तो उसके ग्रहण होने पर आत्मा का ग्रहण हो ही जायगा । यदि

गुणों से गुणी को अस्मितभूत माना जाय तो पट्टाभिः गुणी भी प्रपन्न नहीं।
अतः इन्द्र से विरहिता कोई गुण नहीं होता।^२

इन्द्रभूति गौतम महावीर मगधान से अपने प्रदत्त का समुचित मगधान वर प्रपन्न हुआ और तत्काल उनका मिथ्यात्व स्वीकार कर लिया। उसकी प्रतिभा का उन्मेष हुआ और थोड़ा व्यक्त हुई तथा परिणाम निर्मल हुए। जैन साहित्य में इन्द्रभूति को प्रथम मगधर कहा गया है। मगधान महावीर के उल्लेखों का विवेक प्रचारण और प्रसारण का समूचा उत्तरदायित्व और धर्म इन्द्रभूति गौतम को ही है।

२. अग्निभूति

इन्द्रभूति के बाद लोग दस प्रमुख विद्वान् भी क्रमशः महावीर के सिष्य माने। द्वितीय विद्वान् अग्निभूति का सम्बन्ध था कि कर्म है या नहीं। महावीर ने कहा कि कर्म का अस्तित्व निश्चित रूप से है। वह प्रत्यक्ष नहीं पर अनुमानावश्यक दिखाई देता है। गुण-दुष्कारिक की अनुभूति का कारण कर्म ही है। गुण साधन होने पर सुख दुःखादि के अनुभवन में ओ सारतम्य देता जाता है उसका हृन् कारण कर्म है। आल सारीर का पूर्ववर्ती जो सारीरान्तर है वह कर्म है। वही कर्म कामणि सारीर है।^३ अपने प्रदत्त का उचित उत्तर पाकर अग्निभूति भी महावीर का सिष्य बन गया।

३. वायुभूति

वायुभूति का मतलब था कि चैतन्य भूतों का धर्म है तथा सारीर और अमिल है। महावीर ने कहा कि भूत की प्रत्येक अवस्था में चेतना का अभाव पर सामुदायिक रूप में चेतना की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? रेणु सामुदाय में तैल कैसे उत्पन्न हो सकता है? भूतों के प्रत्येक अंग में चेतन की भूतभावता का जाय और उसके सामुदायिक रूप में चेतना की उत्पत्ति मानी जाय तो भी ठीक नहीं क्योंकि जिस प्रकार मछली में मूत्राधिक मात्रा में मद शक्ति रहती है उसी प्रकार प्रत्येक भूत में चैतन्य शक्ति दिखाई नहीं देती। मछ के प्रत्येक अंग में मदशक्ति मानना अनावश्यक कहा नहीं जा सकता अन्यथा कोई भी मनु मद का कारण हो जायगी। अतः चैतन्य भूतों का धर्म नहीं माना जा सकता और न सारीर भी आत्मा अमिल बड़े का सकते हैं।^४ वायुभूति भी अपने प्रदत्त का समाधान पाकर महावीर का सिष्य हो गया।

२ विदित्वावश्यक माध्य, १५४०-६०
३ विदित्वावश्यक माध्य, १६१०-१४
४ वही, १६२०-१६२४

४. अक्षत

विज्ञान अथवा अथवा बुद्धिमान का सम्यक् वा कि भूतों का कोई अस्तित्व नहीं। वे मात्र स्वप्नोन्मत्त हैं। महावीर ने कहा यदि सगर में भूतों का अस्तित्व ही न हो तो उनके विषय में आकाशगुरुओं के समान सम्यक् ही उत्तर नहीं होगा। विद्यमान धनु में ^१ सम्यक् उत्तर होगा है। अथवा का समाधान हुआ और उगने विद्यमान स्वीकार कर दिया। आगे चलकर वही गिडान्ध धूम्रवाद के रूप में माहिर और वर्तन में प्रस्तुति हुआ। विरोधावस्था माध्य में तो इसे धूम्रवाद वर्तन ही कहा गया है।^२

५. गुणमा

गुणमा 'इह सब के समान ही परमेश्वर में भी वर्तन मिलती है' यह मानते थे। महावीर ने कहा यह सोचना भ्रमपूर्ण है। कार्य कारण के समान होता है, यह नियम एकात्मिक नहीं। प्रज्ञा से सब नामक वस्तुपनि होती है। उगने सर्व लता देने पर भूत उत्पन्न होता है। इसी प्रकार मिश्र-मिश्र सभी का सब मिश्र-मिश्र होता है। उनके अनुसार ही परमेश्वर में जन्म मिलता है।^३

६. मरिचत

"जीव का कर्म के साथ संबंध और मोक्ष होता है" इसमें मरिचत को सम्यक् वा। महावीर ने कहा-भीष्माचार के समान वेह और कर्म अनादि है हेतुहेतुमद्भाव होने से। यह वा कर्ता भ्रमपूर्ण है। इसी के समान जीव कर्म का कर्ता है और इसी प्रकार कारण होने से कर्म देह का कारण है। अनादि होने पर भी जीव और कर्म का संयोग तर द्वारा नष्ट हो सकता है। इस प्रकार अन्ध-मोक्ष की व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है।^४

७. मौर्य पुत्र

मौर्यपुत्र को सबों (देवों) के अस्तित्व में सम्यक् वा। महावीर ने कहा देवों का अस्तित्व है। यह जानिस्मरण आदि से मिश्र है। देवों के न होने पर स्वर्गीय वस्तु निर्माण हो जायगा और वेद-वाक्य निरर्थक हो जायेंगे।^५ मौर्य का सम्बन्ध पिण्ड-बीजन के माहिरों से वा जो प्राण्य लायित थे। यही एक पुत्र नाम मयूर पोषक। वा वा। अन्धपुत्र (प्रथम) इसी मौर्य वस्तु का वा।

१ विरोधावस्था माध्य, १६६०-१७६८

२ वही, १७७०-१८०६

३ वही, १८०३-१८६०

४ वही, १८६७-१८८३

८. अद्विगित

अद्विगित का मत था कि प्रपञ्च और अनुमान से उपपन्न न होने के नागरियों का अद्विगित नहीं है। महावीर ने ब्रह्मा-नागरियों का अद्विगित है क उक्त सर्वज्ञ से देगा है। इन्द्रिय-प्रपञ्च तो उपधारण रहना है। इन्द्रियों होने से उपपन्न करने में असमर्थ है, समर्थ तो प्रपञ्च ज्ञान है। पाँच गिरियों देने वाले एक व्यक्ति के समान जीव इन्द्रियों से भिन्न है। इन्द्रिय-रूप आध्यात्म रहित जीव अधिक वस्तुओं को जानता है। अतः मरक निद्रि में प्रपञ्च और अनुमान दोनों कारण गिद्ध हो जाने हैं। प्रकृष्ट पुण्यभागी देव हैं तो प्रकृष्ट पाप प्राणी मारपी भी हैं ही।

९. अचल धाता

अचल धाता के मत में पुण्य-पाप के सम्बन्ध में पाँच विवक्ष्य थे—(i) देव पुण्य है, (ii) केवल पाप है, (iii) दोनों अपृथक् हैं, (iv) दोनों पृथक् हैं तथा (v) स्वभाव ही सब कुछ है। महावीर ने उत्तर दिया कि पद्माहारी के समान पुण्य की उत्कर्षता और अपकर्षता देखी जाती है। इसी प्रकार अपद्माहारी से दुःख देना सार नाम से देते हैं। दोनों पृथक् हैं और युक्त हैं। परस्पर उत्कर्ष-अपकर्ष में उन्हें तनु है। स्वभाव ही सब कुछ नहीं है।^{१०}

१०. मेतायं

मेतायं को सम्यग् ध्या कि परलोक अथवा पुनर्जन्म है या नहीं। महावीर ने इसका समाधान किया और कहा कि जातिमरण आदि के कारण यह विद्व भूतो के व्यतिरिक्त आत्मा है। वह अमर है और एक शरीर छोड़ कर दूसरा धारण करता है, यही पुनर्जन्म है।

११. प्रभात

प्रभात का मत था दीप के नाश की तरह जीव का निर्वाण जीव का नाश है अथवा अनादि होने से आकाश की तरह जीव-कर्म का सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता। मारकादि पर्यायों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश हो जाता है। फिर मोक्ष नहीं? महावीर ने इसका उत्तर दिया कि मारकादि पर्यायों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश नहीं होता। जीवत्व कर्मकृत नहीं। कर्मनाश होने पर ससार का नाश अवश्य होता है। स्वभाव से विकार धर्म बाना न होने से जीव विनाशी सिद्ध नहीं होता। मुक्त जाने पर जीव और कर्म का सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है। यहाँ भगवान महावीर

१. विमोक्षावस्था भाष्य, १८८८-१८९०
२. वही, १८९०-१८९५

ने पदार्थ के स्वरूप का भी विवनेषण किया कि त्वा उत्पाद, व्यय और प्रीध्यात्मक है । निरवयव प्रीध्यात्मक तत्त्व का प्रतीक है और व्यवहारमय उत्पाद-व्यय तत्त्वों का ।

इस प्रकार इन्द्रभूनि गौतम और उनके दोनों प्रधान विद्वान् साधु महावीर स्वामी की प्रकाश विद्वत्ता और सर्वज्ञता के समस्त मजिनय मनमस्मक हृत् और अपने पौरुह हृत्कार शिष्य परिवार सहित उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया । महावीर स्वामी के ये ही ग्यारह प्रधान शिष्य हुए जिन्हें जैनशास्त्रों में गणधर कहा गया है । इन ग्यारह गणधरों में प्रधान गणधर थे—इन्द्रभूनि गौतम ।

दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनों परम्पराओं में गणधरों की संख्या में तो कोई मतभेद नहीं पर उनके नामों में मतभेद अवश्य है । इन्द्रभूनि, अग्निभूनि, वायुभूनि, सुषर्मा, मौर्यपुत्र, अकम्पित और प्रजात तो दोनों परम्पराओं की साम्य हैं पर व्यक्त, मण्डित, अचमप्राप्ता और येनार्य की दिगम्बर परम्परा स्वीकार नहीं करती । उनके स्थान पर वह मीन्द्रय, पुत्र, मौर्य और अश्वमेध का नाम प्रस्तावित करती है । यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि श्वेताम्बरशास्त्राय मौर्यपुत्र को एक ही गणधर मानती है पर दिगम्बरशास्त्राय उसे मौर्य और पुत्र नाम के पृथक्-पृथक् दो गणधर बनाती है ।^{१२}

चतुर्विध संघ की स्थापना

ग्यारह गणधरों के शिष्य बन जाने पर महावीर भगवान की लोचप्रियता और विभूति और भी अधिक बढ़ गई । गाथ ही उनके अनुयायियों की संख्या में भी वृद्धि होना प्रारम्भ हो गया । यह देखकर भगवान ने तत्त्व गणों की स्थापना की और उनका उत्तरदायित्व पूर्वोक्त गणधरों को सौंप दिया ।

इनके उपरान्त उन्होंने अपने अनुयायियों को भी चार श्रेणियों में विभाजित कर दिया—धमण, श्रमणी, धावक और धाविका । धाविकाओं का नेतृत्व धमणी भगवन्नाथों को सौंपा गया ।

इस प्रकार भगवान महावीर ने जैनात्म शुभता एकदली के दिन चतुर्विध संघ की स्थापना की । बौद्ध शास्त्रिय में मणी, मणी, गणाधरिय, शिष्यकर, सम्मज्ज, आदि सम्माननीय शब्दों से उनका अनेक बार स्मरण किया गया है ।

धर्मप्रचार और धर्मागत

चतुर्विध संघ की स्थापना के उपरान्त भगवान महावीर ने सर्वजनहिताय और सर्वजनसुखाय धर्मप्रचार करना प्रारम्भ किया ताकि सामारिक प्राणी मोक्षिकता से दूर हटकर आत्म-कल्याण कर सकें । जनकल्याणकारिता के कारण ही उन्हें अर्हन्त जिन कहा गया है और पंच परमेष्ठियों में प्रथम परमेष्ठी के अन्तर्गत उनका नाम रखा गया है ।

८. अकम्पित

अकम्पित का मत था कि प्रत्यक्ष और अनुमान से उपलब्ध न होने के कारण नारकियों का अस्तित्व नहीं है। महावीर ने कहा—नारकियों का अस्तित्व है क्योंकि उसे सर्वत्र ने देखा है। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष तो उपचारतः रहता है। इन्द्रियां भ्रमर होने से उपलब्ध करने में असमर्थ हैं, नमस् तो प्रत्यक्ष ज्ञान है। पाँच निडरियों से देखने वाले एक व्यक्ति के समान जीव इन्द्रियों से निग्रह है। इन्द्रिय-रूप आच्छादन रहित जीव अधिक वस्तुओं को जानता है। अतः नरक सिद्धि में प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों कारण सिद्ध हो जाते हैं। प्रकृष्ट पुण्यभागी देव हैं तो प्रकृष्ट पाप भागी नारकी भी हैं ही।^{१०}

९. अचल भ्राता

अचल भ्राता के मन में पुण्य-पाप के सम्बन्ध में पाँच विकल्प थे—(i) केवल पुण्य है, (ii) केवल पाप है, (iii) दोनों अपृथक् हैं, (iv) दोनों पृथक् हैं तथा (v) स्वभाव ही सब कुछ है। महावीर ने उत्तर दिया कि पद्म्याहारी के समान पुण्य की उत्कर्षता और अपकर्षता देखी जाती है। इसी प्रकार अपद्म्याहार से दुःख देखा जाता है। अतः पुण्य-पाप दोनों हैं और वे समुक्त हैं। परस्पर उत्कर्ष-अपकर्ष वे उगड़े तटनु-सार नाम दे देते हैं। दोनों पृथक् हैं और सुख, दुःख से उनका अस्तित्व माना जाता है। स्वभाव ही सब कुछ नहीं है।^{१०}

१०. मेतार्य

मेतार्य की सन्देह था कि परलोक अथवा पुनर्जन्म है या नहीं। महावीर ने इसका समाधान किया और कहा कि जातिस्मरण आदि के कारण यह सिद्ध है कि भूतों के व्यतिरिक्त आत्मा है। यह अमर है और एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करता है, यही पुनर्जन्म है।

११. प्रभाम

प्रभाम का मत था दीप के नाश की तरह जीव का निर्वाण जीव का नाश है। अथवा अनादि होने से आकाश की तरह जीव-धर्म का सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होगा। नारकादि पदार्थों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश हो जाता है। फिर मोक्ष कहीं? नरक इत्यादि उत्तर दिला कि नारकादि पदार्थों के नष्ट हो जाने पर जीव का नाश न भ्रमर इत्यादि नहीं। कर्मनाश होने पर सत्कार का नाश अवश्य होता है। कर्मनाश नहीं। कर्मनाश होने पर सत्कार का नाश अवश्य होता है। सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। यहाँ भगवान् महावीर

१. अब कुछ सामान्य देस में भ्रमण कर रहे थे तब थुम्ब ने आनन्द के पास पहुँच कर यह कहा कि मने । निवृत्तनागगुण अभी-अभी पावा में परिनिर्णत हुए हैं । उनके परिनिर्णत हो जाने पर त्रिपठ (तीन गाथ) को माथों में बिभक्त होकर बगह बगने.....मानो मुड हो रहा था ।^{१२}

४. कुछ अब रात्रयुद्ध में थे, मधिय ने निरवशक्ति निवृत्तनागगुण आदि से कुछ ज्ञान पूछे बिना के उत्तर नहीं दे गये । मधिय उन्हीं घन्टों को लेकर कुछ के पास जाना चाहता है । तब उसके मन में मात्र घन्ट-बिन्दु गया होता है कि भ्रमण बीतम तो आयु में लक्षण है और उन्होंने अभी-अभी प्रकटा की है ।^{१३}

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट निश्चित कथ के स्पष्ट हो जाता है कि भगवान महावीर महात्मा कुछ के आयु में उपेष्ट के और उनका परिनिर्णत कुछ के पूर्व हुआ था ।

महावीर का परिनिर्णतकाल साधारणतः विद्वानों में ४९८ और ४८२ तथा ४२७ और ४४६ ई० पू० के बीच निवर्तित किया है । सम्प्रति हम्मन जेबोरी प्रथम विद्वान होने किहोंने महावीर की परिनिर्णत तिथि निर्दिष्ट करने का उत्क्रम किया । साधारण सूत्र की भूमिका में महावीर और कुछ की तुलना करते हुए उन्होंने यह स्वीकार किया कि कुछ के पूर्व ही महावीर परिनिर्णत हो चुके थे ।^{१४} पत्तन, कल्लभुव की भूमिका में उन्होंने महावीर का परिनिर्णत काल ४६०-६७ ई० पू० स्वीकार किया । उनका यह कथन परिनिर्णतपूर्वक पर आधारित है कि अश्वगुप्त का सम्यक्सिंह महावीर के निर्णय के १२२ वर्ष बाद हुआ ।^{१५} जेबोरी के अनुसार अश्वगुप्त का सम्यक्सिंह ३१३ ई० पू० में हुआ । अतः महावीर का परिनिर्णत ४९८ ई० पू० (३१३ + १२२ = ४९५ ई० पू०) होना चाहिए । बार्नेटियर ने भी इसी निष्ठा का समर्थन किया है ।^{१६} यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जेबोरी और बार्नेटियर ने पालि साहित्य में समागत महावीर के निर्णय में सम्बद्ध उक्त उल्लेख ध्यातिपूर्ण माने हैं । पर यदि हम भी उन्हें आश्विपूर्ण मानते हैं तो उक्त कथन का प्रतीक्षण करना अनिवार्य हो जाएगा ।

महात्मा कुछ का परिनिर्णत ३८३ ई० पू० में हुआ । अधिपति विद्वान इस मन की स्वीकार करते हैं । इन विधि में कुछ और महावीर के परिनिर्णत के बीच समग्र

१२ मत्तामनिपाय, सामान्यमुत्तम, ३, १, ४; धीपनिपाय, सामान्य मुत्तम, ३, १, संकीर्ण परिभाषामुत्तम, ३, १

१३ मुत्तनिपाय, मत्तियमुत्तम

१४ SBE. Vol. 22, Introduction, p. 22. (1884)

१५ परिनिर्णतपूर्वक, ८, ३३६

१६ इण्डियन एजिटिवरी, १९१८, पृ० ११८, वेम्पिन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, पृ० १३६-१४०

भाषियों की ही परा गलतानी की गई है। मध्य है वहाँ की संज्ञा के अमान्य उगरी को मगा गया है, जो ग्राह्यही प्रमाण तक पहुँच चुके हैं। यदि ऐसा माना जाय तो वह सत्यानवधारण के प्रदर्शित मायुकों की ही होगी। उचित-गोपी को भी श्रावक कहा गया है। गायारण श्रावक-प्राविरापो की गलतानी नहीं होगी।

परिनिर्वाण

राजपुत्र ने उपागिषा कर्माचार कर तीर्थंकर महावीर धर्म-प्रचार करने हुए मम्मों की राजधानी प्रगापुरी (पावापुरी) पहुँचे। वहाँ के राजा हृदिगान ने उनका स्वागतीत स्वागत किया। यमोदरेण देवे हुए प्रगापुरी में कर्माचार के तीन माह व्यतीत हो चुके। चौथे माह की कानिक दृष्ट्या प्रमाणस्था का प्राण काल भगवान महावीर का अन्तिम समय था। वे अनवरत धर्म-प्रचार दे रहे थे। उनकी मत्ता ने काशी, कोशल के निष्पत्ती, जो मम्म और अठारह गणराजा भी उपस्थित थे। मम्म ने उन्होंने अध्यागिया कर्मों का भी साथ का परम निर्वाण तब प्राप्त किया।^{१२} पारि

भगवान महावीर ने तीस वर्ष की आयु में महाप्रतिनिष्क्रमण किया एवं छद्मरूप काल के बारह और केवलीचर्या के तीस, कुल कयापीय चातुर्मास रिये। इस प्रकार कुल मितार महावीर की आयु बहत्तर वर्ष की गानी गई है।

इस निर्वाण प्राप्ति के उपलब्ध में निष्पत्ति, स्वस्व राजा महाराजाओं ने शीघ्र जलाकर निर्वाण महोत्सव मनाया। आज भी दीपावली के रूप में उसे पूज्यमान में मनाया जाता है।

परिनिर्वाणकाल

महात्मा बुद्ध के समान भगवान महावीर का भी परिनिर्वाणकाल विवादवाज बना हुआ है। पारि साहित्य में एतत्सम्बन्धी कार महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं—

१ अजातशत्रु ने तथागत बुद्ध से कहा कि वह पूर्ण काम्य आदि तथाकथित तीर्थंकरों से भेंट कर चुका है। निगण्डनात्पुत्र के भी दर्शन कर चुका है। वे सभी विरयभिन्नित, अजगन और वयोनुपत (वयोवृद्ध) हैं।^{१३}

२ प्रसेनजित ने बुद्ध से कहा कि गौतम ! दूसरे धम्म-वादाण सभी, गणाचार्य तीर्थंकर निगण्डनात्पुत्र आदि से भी पूछे जाने पर उनसे उत्तर मिला कि वे अमुक्त सम्यक् सम्बोधि-प्राप्ति का अधिकार पूर्वक कथन नहीं करते। आप तो अत्यवयस्क और मत्त, प्रवृत्त हैं। फिर यह कैसे कह सकते हैं ?^{१४}

१२ कल्पसूत्र, १२६; उत्तर पुराण।

१३ दीपनिर्वाण, तामज्जकलमुत्त. भाग १, पृ० १७

१४ संयुतनिर्वाण, बहुरमुत्त

७५ वर्ष का व्यवधान रहा हो. यह तथ्यमगत नहीं समझा। बासम भी जेकोन^१ मत का अनुकरण करते हुए दिपते हैं। उनका कथन है कि पालि साहित्य में गोसा की मृत्यु के स्थान पर महावीर की मृत्यु का उल्लेख भूल से हो गया होगा।^२

मज्झमदार और रायचौधरी का मत है कि महावीर का परिनिर्वाण अज्ञानघ के सिद्धांतनारोहण के लगभग आठ वर्ष बाद हुआ। इसका समर्थन परिनिष्ठगर्वन् होता है जिसके अनुसार चन्द्रगुप्त का सिद्धांतनारोहण महावीर निर्वाण के १५५ व बाद हुआ (३२३ + १५५ = ४७८ ई पू)।

हार्नेले ने बुद्ध का निर्वाण बाल ४८२ ई मानते हुए भगवती सूत्र की परम्परा^३ को सही माना है कि महावीर और गोसानक की मृत्यु में सोलह वर्ष का अन्तर है। इसलिए उनका कहना है कि महावीर का निर्वाण ४८४ ई पू. में और गोसानक का निर्वाण ५०० ई पू में हुआ।

परम्परानुसार महावीर का परिनिर्वाण ५२७ ई पू. में हुआ। अधिवात विद्वान इस मत को स्वीकारने लगे हैं। यह परम्परा विक्रम सक्त् के प्रवर्तन की माय्यता पर आधारित है। कुछ विद्वान मानते हैं कि विक्रम का जन्म महावीर के ४७० वर्ष बाद और सिद्धांतनारोहण तथा मृत्यु क्रमशः ४८८ एव ५१८ वर्ष बाद हुई। इसी प्रकार कोई कहता है कि विक्रम सक्त् महावीर की मृत्यु के ४१० वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ। अर्थात् महावीर का निर्वाण काल ग्रे स के प्रवर्तन की माय्यता पर टिका हुआ है। यदि बि स. का प्रारम्भ उसके जन्मकाल से लिया जाय तो महावीर का निर्वाणकाल ५२७ ई पू (५७ + ४७० = ५२७ ई पू) माना जायगा। यदि उते उनके सिद्धांतनारोहण से माना जाय तो वह काल ५४५ ई. पू (५७ + ४८८ = ५४५ ई. पू.) सिद्ध होगा और यदि उसे उसकी मृत्यु से प्रारम्भ हुआ कहा जाय तो महावीर का निर्वाण बाल ६२२ ई. पू (४७० + ८० + ७२ = ६२२ ई पू.)। यदि हम पालक राजा के ६० वर्ष का व्यवधान मानें तो महावीर का निर्वाण बाल ४६८ ई. पू. (५२७ - ६० = ४६७ ई. पू) मानना पड़ेगा। इस प्रकार यह समस्या और भी विचारग्रस्त बन जाती है।

जैन परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक महावीर के परिनिर्वाण के २१५ वर्ष बाद हुआ। हेमचन्द्र के अनुसार यह राज्याभिषेक महावीर के निर्वाण के १५५ वर्ष बाद हुआ।^४ समझा है, हेमचन्द्र ने यहाँ भ्रम कर दी। महावीर निरा काल के दिन ही पालक ने उज्जयिनी में राज्य समाप्ता का। उसका यह राज्य १

२०. History and Doctrines of the Ajivikas, p. 74.
२१. मयवर्गीय, पृष्ठ १५
२२. परिनिष्ठ गर्वन्, पृ. ३३६

वर्ष तक रहा। उसके बाद १२२ वर्ष तक मन्द-राज्य रहा। हेमचन्द्र इन ६० वर्षों को छोड़ना भूल बड़े परिनिष्ठ धर्मज्ञ में। यह अधिक सम्भव है।

चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण निर्वाणवाद रूप से ई० पू० ३२७ माना गया है। शिवोपासीयवृद्धा आदि प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार यह घटना महावीर निर्वाण के २१५ वर्ष बाद घटी। यह राज्यारोहण अवन्ति का होता चाहिए जो पाटलिपुत्र राज्या-रोहण से दस वर्ष पूर्व हुआ। इस प्रकार महावीर का निर्वाणवर्ष ३०० — १० + २१५ = ई० पू० ३२७ निश्च होता है।

दि० म० का प्रारम्भ महावीर के निर्वाणवर्ष से ४०० वर्ष बाद हुआ। यह परम्परा अधिक ऐतिहासिक मानी जाती है। यह स्पष्ट है ही दि० ३७ ई० पू० में दि० म० प्रारम्भ हुआ है। अतः महावीर का निर्वाण ३२७ (४७० + १४३) ई० पू० माना जाना चाहिए। इसी प्रकार एक सवर्ष का प्रारम्भ महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष व पाँच माह बाद माना जाता है। एक म० का प्रारम्भ ई० पू० ७८ में हुआ है। अतः ६०५ + ७८ = ३२७ ई० पू० में महावीर का निर्वाणवर्ष निश्चित है।

हेमचन्द्र की भूल विनिष्ठताका से भी स्पष्ट हो जाती है। वहाँ लिखा है कि बुधायुध बुधारपाल का जन्म महावीर निर्वाण से १६६६ वर्ष बाद होगा। यह निर्वाणवाद मान्य है कि बुधारपाल राजा का जन्म ई० ११४२ में हुआ। अतः महावीर का निर्वाणवर्ष १६६६ — ११४२ ई० = ३२४ ई० पू० है।

मुनि वरदानविग्रह जी, कैलासचन्द्र जी शास्त्री, धानिलाल जी साहू आदि विद्वान् इस विधि को स्वीकार करते हैं पर वे पानि के सम्बद्ध उद्धरणों को अप्रामा-णिक मानते हैं। किञ्चिद्गुरु मूर्ति उन्हें प्रामाणिक मानने हैं पर आत्म का अनुकरण करने हुए कहते हैं कि वहाँ महावीर का नहीं, योगात्मक की भृत्य का उल्लेख होता चाहिए।

दुर्गा और वे० पी० जयमलानन्द, राधाकुमुद मुक्ती और वामनाप्रसाद आदि विद्वान् महावीर का निर्वाण ३४५ ई० पू० मानते हैं। उनका मुख्य तर्क यह है कि वि० म० का प्रारम्भ विग्रह के राज्यारोहण से होना चाहिए। यदि इसे हम स्वीकार करते हैं तो महावीर का परिनिर्वाण ३७ + १८ + ४०० = ४५५-४४५ ई० पू० ठहरता है और बुद्ध का परिनिर्वाण सिद्ध परम्परा द्वारा मान्य ४८४-४८२ ई० पू० निश्चित होता है। इस प्रकार दोनों महापुरुषों के परिनिर्वाण में एक वर्ष का अन्तर रह जाता है। यह तथ्य भी विचारणीय है। जैन-बौद्धात्मियों के आधार पर महावीर और बुद्ध की जीवन-घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करते पर यह तथ्य और स्पष्ट हो जाता है। इसे हम आगे स्वतन्त्र रूप से निम्न रहे हैं।

निर्वाण-स्थल

अवदान महावीर का निर्वाण-स्थल भी एक विवाद का विषय बना हुआ है।

वर्णानुसार महावीर के पुत्रीनन्द के महीनन्दी सन्निधौ नामक ग्राम की महावीर का निर्वासन-स्थान बना है। उनका कहना है कि यीसाका का ही अन्धधृष्ट रूप सन्निधौ का नाम है।^{२५} अथवा कायाविज्ञान की दृष्टि से यह सही नहीं उभरता। डॉ० मेथिलान्द एण्डरनी ने उल्लेख प्रमाणों की भीमता करते हुए अन्धधृष्ट के अन्वयन वर्णानुसार का ही मध्यम नामा लिख करके का प्रमाण दिया है।^{२६} हेरेण्डमुरि की ने भी इसी नाम की महावीर की निर्वासन-स्थानी स्वीकार दिया है। उनका हल मध्यम में तीन प्रमाण लगे हैं—(i) अन्धधृष्ट नाम प्रदेय में नहीं पड़ेगा मन्त्रा (ii) अन्धधृष्ट महावीर के निर्वासनानुसार में नहीं उल्लेखित नहीं मही हुआ, (iii) अन्धधृष्ट में इतिहास नाम के होने की संभावना ही नहीं।^{२७} अथ अन्धधृष्टों का महावीर की निर्वासन भूमि नहीं जानी जा सकती।

धर्मसंस्थाप और महावीर का शासन विषय

विद्वेष पुत्रों में अहं कहा का पुत्र है कि धर्मसंस्थाप और महावीर के शासन में किञ्चित् अन्तर है। यह नाम उल्लेखानुसार में उल्लिखित नहीं-भीम मन्त्रा में भी प्रकट होता है। ऐसी धर्मसंस्थाप शासन के अनुयायी धर्म के और भीम महावीर व वृत्तिय में। दोनों के संसार तथा अथ गांधर्विक उल्लेखों में धर्मसंस्थाप और महावीर का शासन-विषय नाम प्रमाणों की वृत्ति हो जाता है—

(१) अन्धधृष्ट महीनन्दी और अन्धधृष्ट महीनन्दी महावीर के अहं नाम, अन्धधृष्ट, अन्धधृष्ट और अन्धधृष्ट—उन तीन महावीरों (धर्म) का निर्वासन दिया था किञ्चित् अन्धधृष्ट में मन्त्रा धर्मसंस्थाप मन्त्र के महीनन्दी में पाण्डुरीम का ही उल्लेख दिया था। उनके अन्धधृष्ट में अन्धधृष्ट अन्धधृष्ट मन्त्रा का।^{२८} इसका मूल कारण यह है कि अन्धधृष्ट महीनन्दी के नाम अन्धधृष्ट और अहं होने हैं, अन्धधृष्ट महीनन्दी के नाम अहं अथ अन्धधृष्ट महीनन्दी महीनन्दी के नाम अन्धधृष्ट और अहं होने हैं। इसलिए अन्धधृष्ट महीनन्दी के शासनकर्त्ता नामों के लिए गुणधर्म का संभाव्य नाम पुर्वम होता है और अन्धधृष्ट महीनन्दी के शासनकर्त्ता नामों के लिए उनका अन्धधृष्ट वृत्ति होता है। पर अन्धधृष्ट महीनन्दी के अनुयायी नामों के लिए उनका नाम और अन्धधृष्ट दोनों मन्त्र होने हैं।

(२) अन्धधृष्ट मन्त्रा में मन्त्रा धर्मसंस्थाप मन्त्र के महीनन्दी में नामाविष्ट, परिहार विमुक्ति, मन्त्रमन्त्राधर और अन्धधृष्ट रूप धर्म धर्मों का ही विधान दिया था

२५ पासा महीनन्दी, पृ० ४३

२६ महीनन्दी महावीर और उनकी आचार्य मन्त्राधर, भाग १, पृ० २६२-२६०

२७ अन्धधृष्ट महावीर : एक अनुवीनन्, पृ० ६२

२८ टालीममन्त्र, ४, २६६; अन्धधृष्टमन्त्र, २१, १२; अन्धधृष्टमन्त्र, नामाधृष्टमन्त्र।

जबकि ऋषभदेव और महावीर ने छेदोपस्थापना का विधान करके चारित्र-सत्त्वा पाँव कर दी थी। आचार्य बुद्धबुद्ध ने इसलिए प्रव्रज्यादायक के साथ-साथ छेदोपस्थापना आचार्य का भी उल्लेख किया है। छेद का तात्पर्य है प्रमादपूर्ण प्रवृत्ति।^{२१}

(३) प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर का धर्म अचेत होता है और वेद तीर्थंकरों का धर्म सचेत होता है।

(४) ऋषभदेव और महावीर ने रात्रि भोजन त्याग को व्रतों में सम्मिलित किया जबकि वेद तीर्थंकरों ने उसे व्रतों में न रखकर अहिंसा में गमित किया।^{२२} प्रथम परम्परा उसे मूलगुण मानती है जबकि द्वितीय परम्परा उत्तरगुण। उत्तरकामीन आचार्यों में भी रात्रि भोजन त्याग के विषय में मनभेद रहा है।

(५) पार्वर्ष परम्परा के अनुसार मिश्र के लिए दोषों के होने पर ही प्रतिक्रमण करना पड़ता था पर महावीर ने उसे चारित्र का एक अनिवार्य तत्त्व बना दिया। दोष हो या नहीं, प्रतिक्रमण करना आवश्यक हो गया।^{२३}

☆

भगवान

^{२१} प्रवचनसंग्रह, ३, १०-१७

^{२२} दशरूपचरित्र, परिग्रहवृत्ति, पृष्ठ १५०

^{२३} मुद्राचार, ७, १०५-१०८; विनोदचन्द्रक भाष्य, १२६७

भगवान महावीरकालीन साहित्य और कला

१. आचारांग (आचारंग)
 २. सूयगडांग (सूत्रकृतांग)
 ३. टाणांग (स्थानांग)
 ४. समवायांग
 ५. विवाहपञ्चसति (व्याहयाप्रतप्ति)
 ६. नायाथम्मवहाओ (नातुधमं वहांग)
 ७. उवात्तगवशा (उवात्तवशांग)
 ८. अंतगद्वसताओ (अन्त.कृद्वांग)
 ९. अणुत्तरोववाह्दअदसाओ (अणुत्तरोपपा-
तिक वशांग)
 १०. वण्हाणागरणाई (प्रानव्याकरणांग)
 ११. विवागमुय (विवाकसूत्र)
 १२. विट्ठिठवाए (दृष्टिवाव)
-

अगबाह्य व्यतिरिक्त के पुनः दो भेद किये गये—बानिक और उत्तराधिक। बड़ी उपांग जैना कोई उन्नेय नहीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि उपांगों के रूप में आगम या विभाजन बहुत प्राचीन नहीं। अंगों के साथ उपांगों का कोई मेल भी नहीं दिगता।

अत और अगबाह्य ग्रन्थों में प्रयोगों भी मिलते हैं। उन्हें अलग करने के बाद ही ग्रन्थों का सम्य निरिचन किया जा सकता है। महावीर की पुन बाणी का सम्मन भी तभी हो सकता है जब हम प्रयोगों को अलग ग्रन्थों से निकाल देने के लिए तैयार हो जायें। अगबाह्य ग्रन्थ आचार्यों के द्वारा लिखे गये हैं। आचनाओं अथवा सत्त्वनाओं में उनका कोई सम्बन्ध नहीं। पञ्चवना (प्रज्ञापना) के कर्ता आर्य श्याम, दगाधून, बहुराज, रिशनिपुंठि और व्यवहार मूर्तों के कर्ता मडबाहु द्वितीय (ईसा की चौथी शती), दगावैशालिक के कर्ता शर्यमय, नन्दीमुख के कर्ता देवबाहक (५-६वीं शती), वाडम्बरन, आडरपञ्चवनाण और सत्परिप्रा प्रकीर्णकों के कर्ता भीरमड (ई० १५१) पाये जाते हैं। उत्तराध्ययन एक सत्त्वनात्मक ग्रन्थ है। शेष अगबाह्य ग्रन्थों के लेखकों की अभी अवधारणा नहीं हो सकी। पर यह निरिचन है कि वे उत्तरकामीन आचार्यों के द्वारा लिखित हुए हैं। इनका ही नहीं, लिखित होने के पूर्व लिखे गये ग्रन्थों में भी प्रयोगों सम्मिलित हो गये। अब ग्रन्थ भी इसके अपवाद नहीं। अतएव प्रत्येक ग्रन्थ का मूलम परीक्षण कर उनके मूल रूप को निरिचन करना तथा उनका सम्य निर्धारित करना एक बड़ा श्रमनाम्य पर महत्त्वपूर्ण कार्य शेष है।

यहाँ हम अग ग्रन्थों की ही महावीर की पुनबाणी मानकर उसे महावीर-कानीन साहित्य के रूप में ग्रन्थन कर रहे हैं। इन्हें धुनि-परम्परा के माध्यम से सुरक्षित रहने का प्रयत्न किया गया एवं 'मे मृप' जैसे वाक्य बनना और धोना के बीच एक सीमरे बला की बात करते हैं जो सम्भवतः महावीर रहे होंगे। उत्तरकाल में आचार जीपिय, अवधारणा-वाक्य जीपिय और धुनि परम्परा के लोग को देखकर महावीर के उपांगों की पुनकाकड़ करने का प्रयत्न हुआ, फिर भी अंगों का आचार-प्रचार घटता-बढ़ता ही रहा। इसे हम आगे के पृष्ठों में स्पष्ट करेंगे।

हादशाओं की मरचना पूर्व-ग्रन्थ-परम्परा पर आधारित रही है। उनके क्रम और विषय में आधारगतः दिगम्बर और स्वेताम्बर परम्पराओं में कोई विशेष मतभेद नहीं। परिमाण और स्वरूप में विभिन्न भेद अवश्य दिखाई देता है। सम्य है यह अन्तर प्रतिष्ठाओं के सम्बन्ध में रहा होगा।

हादशाओं के नाम इस प्रकार हैं—आधारांग, भुववद्व, टाणांग, समवादाग, विद्याहास्यति, नायापममकटाओ, उचाममदमाओ, अत्रयवदमाओ, अणुलगेववाद्यदमाओ, पण्डवागगाई, विवागमुख एवं विट्ठिवाव। इनका सतिष्ठ आलोचनात्मक विवरण देने पर महावीर नाम के साहित्य की रूपरेखा सामने आ जाती है।

१. आधारांग (आधारांग)

हादशाओं में आधारांग को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। सम्भवतः इसीलिए

वर्तमान में उपर्युक्त भागमें मैं अनेकतरा की स्थान स्थान पर उपादेय और प्रत्यापन गाया गया है तथा मनेरवरा की भाव की प्रत्यापन पर तर्क देकर स्वीकार किया गया है। इस सारमें मैं ३०० लेखर ने कहा यह अर्थगत नहीं कि अनेक प्राचीन परम्पराओं की भागमें मैं अलग कर दिया गया है और यह देवदर दिग्गजर परम्परा में उगे मानने में मनेवा अस्वीकार कर दिया हो। मनेवनी प्रारम्भना आदि कर्मों में कुछ उदाहरण भागमें से दिये गये हैं पर वे वर्तमान में उपर्युक्त भागमें मैं नहीं मिलते। अब यह कहा जा सकता है कि भागमा में क्या म परिवर्तन-परिणीत एक साथ काम कर होगा रहा है।

अगस्त भाग परम्परा म उपर्युक्त माहित्य में मे महावीरवाचीन माहित्य दिने कहा जाय यह प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होगा है। इस सारमें मैं समवाय का प्रारम्भिक भाग उल्लेख्य है जहाँ भागमा की परिधि देन हुए कहा गया है—“इह गजु, समनेण गणवया महावीरेण आदरेण शिष्यनेण—इमे दुवायमते गणिनिणे पणसे, तज्जहा आदारे, सुवण्डेढाने, समवाए, विवाहपन्ननि, नायाधम्मरहाओ, उवागग-दमाओ, अणवद्धमाओ, अणुनरोववाइयदमाओ, वण्णावावरणाए, विवागमुए, शिष्टिवाए। तथ व जे से मउरये अगे समवाएम्नि आहिण तस्म व अयमट्ठे, पणसे।

यहाँ “जट्ठे पणसे” पर यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भागमा की संरचना भगवान महावीर की नहीं बल्कि उनके उपदेशों के आधार पर अथवा उपदिष्ट प्रवचनों के अर्थ के आधार पर रचित उनके शास्त्रात् सिद्ध अर्थात् गणधरो की यह अर्थ रचना है। ‘गुयमे आउम तेण गणवया एवमरथ’ जैसे शब्द भी इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं। यहाँ ‘गणहर’ शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सभी गणधर मिलकर अर्थ रचना करते हों। पर दिग्गजर परम्परा ने गणधरो में भी शीतम गणधर को ही भागमा का अर्थकर्ता माना है जबकि दिग्गजर परम्परा शीतम गणधर का नामोल्लेख प्रवचनी सूत्र आदि में करते हुए भी भागमा का विशेष सम्बन्ध गुप्तम गणधर से स्थापित करती है। उत्तरपाल में प्रत्येक बुद्धों, श्रुतकेवलियों, पूर्वजों, आचार्यों आदि के द्वारा रचित ग्रन्थ भी प्रमाण रूप में स्वीकार किये गये।

ऐसा लगता है भूभागम जिनमें महावीर की मूल वाणी को सूचने का प्रयास किया गया है, कुछ मिलाकर बारह थे। इन्हीं अग ग्रन्थों को द्वादशांग कहा गया है। गणि-पिटकअग, अगप्रविष्ट जैसी सजायें भी इसी के लिए प्रयुक्त हुई हैं। महावीर से पूर्व की भागम परम्परा जो श्रुति परम्परा से महावीर को मिली होगी, का भी सामावेश इसी द्वादशांग में हो गया। इस द्वादशांग के आधार पर उत्तरकाल में रचित समस्त भागम अगवाक्य बहे जाते हैं। समवायाग, अनुयोग, नन्दी, धवला आदि ग्रन्थों में भी यही विभाग स्वीकार किया गया है। जपान, छेद, धुनिका, मूल आदि सूत्र ग्रन्थ उत्तरकालीन हैं। स्थानाग सूत्र में श्रुतज्ञान के दो भेद बताये गये हैं—अगप्रविष्ट और अगवाक्य।

इसे भगो का शार कहा गया है—चंदाणं हि मारो वातागो ।^{१४} इनके आचार की मर्यादा प्रगट होती है। इनकी रचना पूर्ण व्यक्तों के पूर्ण हृदय का बाह्य में, यह एक निराल-प्रकाश प्रकाश है। यह एक व्यक्तिगत यह प्रतीत होता है कि पूर्णों की रचना नहीं हुई होगी और उन्हीं के आचार पर आचारानुसार रचा गया होगा।

मन्वीगुरु के अनुसार उनमें नवमन विधियों का आचार, मोक्ष प्रदान करने की विधि, विद्या, विनयकर्म (कर्मशाय), शिक्षा, भाषा, अभाषा, मत्तान्त, निन्द, विगुडि, पापा आदि का वर्णन है। इनमें दो मनु स्वरूप हैं, नवमीय भगवन्त है, ८५ मनुरेण-काम है, दो भुविजाये है, और १८००० वर है। मनुवाग्मनादिक के अनुसार इनमें सभी का विधान, मांड मुडि, पांच ममिदि, तीन भुवि, आदि वर्णित है। मनुवाग्मनाम के अनु-सार इनमें यह बताया है कि भुवि की कैते बनना चाहिए, कैते मना होना चाहिए, कैते बैठना चाहिए, कैसे सोना चाहिए, कैसा भोजन करना चाहिए, कैसे धोना चाहिए।^{१५}

आचारानुसार दो श्रुतस्वरूपों में विभाजित है—व्यक्तार्थ और भाषाचार। यह ब्रह्मचर्य शब्द विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। समय के माध्यम से उगने सभी अध्ययनों को अनुसूत किया है। इस श्रुतस्वरूप में ६ अध्ययन हैं—मत्तपरिणता, सीधविजय, सीधपरिणत, सम्मत्त, आकती अथवा सीधसार, धूय, विमोठ, अवधानगुण और महा-परिणता। इनमें महापरिणता नामक अध्ययन उपलब्ध नहीं। समवायान् टीका में इस अध्ययन को मांडवा क्रम दिया गया है। यह आचारानुसार नियुक्ति में उक्त का क्रम मातवा है। संभव है सीधार के समय तक यह अध्ययन रहा हो और बाद में किसी कारणवश उसका लोप हो गया हो। आचारानुसार पर मद्रवाह ने नियुक्ति, जितदामनगि ने धूर्ण और सीधार ने टीका लिखी है।

आचारानुसार का प्रारम्भ मत्तपरिणता (मत्तपरिणता) से हुआ है जिसमें और-समय पर बन दिया गया है। उस समय हिंसा का आतावरण अधिक था। धर्म के नाम पर जीवों का बध एक मेल-सा बन गया था। भगवान् महावीर ने जनता की मनोवृत्ति को समझा और उसे दूर करने का उपदेश दिया और कषायजन्य प्रवृत्तियों से विमुक्त होकर अध्यात्म मार्ग की ओर ससारियों को घोटने का प्रयत्न किया। इसी तरह बाह्य शुद्धि का आह्वान, आतीय प्रधानता आदि दोषों को भी दूर करने की बात कही।

प्रथम श्रुतस्वरूप में अचेलक और सचेलक दोनों परम्पराओं का वर्णन मिलता है। सचेलको में एक वस्त्रधारी, द्वि-वस्त्रधारी, और त्रिवस्त्रधारी साधुओं का उल्लेख है, पर पाणिपाथी साधुओं का कोई उल्लेख नहीं। इससे स्पष्ट लगता है कि पाणिपाथी

१४ आचारानुसार नियुक्ति भाषा ८-६, आचारानुसार वृत्ति, पृ० ५

१५ मद्रवाह भाषा पृ० ६६; कषाय भाषा, भाषा १, पृ० १२२

साधुओं का अतिशय उत्तरदायीन विराम का परिणाम रहा होगा। तभीसे स्वयं के अध्ययन से ऐसा लगता है कि संयोजक का अनुपात अपेक्षित की ओर अधिक रहा है। उनकरण तापद को यहाँ पर लक्ष्यार्थ कहा गया है।^{१८} और यह भी कहा गया है कि यदि मितु अपेक्षित परीयह और लज्जा परीयह न लह सके तो उसे चटि-कण्ठ ग्रहण करना चाहिए। इसी अध्ययन में अपेक्षित और लक्ष्य के बीच किसी प्रकार की व्योमता और लक्ष्यता का भाव जागृत न हो इसके लिए दोनों अक्षयार्थों में समान रहने के लिए भी कहा गया है।^{१९} इससे इस ग्रन्थ के मुद्रागारका दृष्टिकोण का आभास होता है। यहाँ बार-बार यह भी कहा गया है कि सीमादि की सीमा होने पर कथन ग्रहण कर लेना चाहिए और बाद में इसे छोड़ देना चाहिए। क्योंकि लापकता प्रमुख उत्तरदायीन विराम का परिणाम है। इसी अध्ययन में वास्तव्य (वार्त्तव्य) साधुओं का भी उन्मेष मिलता है। उनका मूलन, सम्यक् वाद्वैरक्षण्य का साधुओं से रहा होगा पर उनके आचार दीनित्य को देखकर वास्तव्य तत्त्व के प्रयोग में निष्ठा का भाव ज्ञानवने लगा।

जैनधर्म की प्राचीन परम्परा तथा महावीरजीन साहित्य की दृष्टि से इन व्युत्पत्तय का विशेष महत्त्व है। उस समय प्रचलित अन्य विनय परम्पराओं का भी यहाँ महान मिलता है। हिंसा-अहिंसा और अणुम-नणुम की व्याख्या में ही यह साधुका स्वयं समाप्त हो जाता है। इनसे यह पता चलता है कि महावीर के समय हिंसा के विविध रूप प्रचलित थे और तत्पर्यायों में बाह्य गुडि को विशेष महत्त्व दिया जाता था। महावीर ने इन दोनों विचारों का मंजन कर सम्यक् योग की स्थापना की। इन महावीर के आचार-विचार की संक्षिप्त रूपरेखा कहा जा सकता है।

उपधान व्युत्त में महावीर की दीक्षाधर्मा का वर्णन मिलता है। उपधान का अर्थ है तप। महावीर की लपोताधना पर हमसे प्रभाव डाला गया है। इनका कुछ मात्र प्रक्षिप्त-ता लगता है। इनके वर्षा उद्देशक में कहा गया है कि महावीर ने महा-मिनिधमण के तेरह माह तक देवदूथ्य वस्त्र धारण किया और उसके बाद उनका परिणाम दिया। अथवा भी कहना चाहिए कि यह स्वयमेव लक्ष-नष्ट हो गया। महावीर के वस्त्र की देवदूथ्य ग्रहण कहा जाना उनके प्रति अहंता की एक अमि-व्यक्ति मात्र लगती है। उत्तरदायीन अधिवाध महावीर चरित आधारांग के उपधान व्युत्त पर आधारित रहे हैं। मेराच का अनुपात चरितार्थिक वृत्ति की ओर निर्माई देता है त्रिमे बाद में महावीर के जीवन का एक लक्ष-सा बना दिया गया।^{२०}

१८ सापक्षिय आनममाननेवे से अमित्रमन्नाग मवड—अष्टम अध्ययन, उद्देशक ४, सूत्र २१०।

१९ अष्टम अध्ययन, सप्तम उद्देशक, सूत्र २२०

२० विशेष देखिये—अपधान महावीर के जीवन में चटित चरितार्थिक घटनाओं का पुनर्स्थापन—डॉ० पुष्पलता जैन, जैन विद्या परिषद जयपुर में चटित निबन्ध, १९७५।

आचारारण का द्वितीय धृतस्कन्ध प्रथम धृतस्कन्ध की चूलिका के रूप में लिखा गया। प्रथम धृतस्कन्ध में वर्णित विषय को ही यहाँ विस्तार से व्याख्यायित किया गया है। प्रथम चार चूलिकाओं का संकलन तो यहाँ मिलता है, पर पाँचवीं चूलिका को पृथक् रूप से निम्नीय सूत्र नाम दिया गया है। आचारारण का यह भाग निश्चित ही उत्तरकालीन है। निर्युतिवार ने भी इसे स्थविर कृत माना है। इसकी आचार प्रक्रिया सचेलक परम्परा की ओर अधिक झुकी हुई है। प्रथम धृतस्कन्ध की अपेक्षा यह व्यवस्थित भी अधिक है।

महावीर के मूल उपदेश को जानने की दृष्टि से आचारारण का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। अथवा मिश्र के उपकरणों में यहाँ मुँह पर पट्टी जैसे किसी उपकरण का उल्लेख नहीं। यद्वा शब्द का प्रयोग भी प्रणिमा के अर्थ में दिखाई नहीं देता। चारण भावनाओं का भी छुटपुट उल्लेख हुआ है, पर स्पष्ट रूप से नहीं। अतः आचारारण भगवान महावीर के काल में प्रचलित अन्य मतवादों का सम्पर्क देते हुए एक क्रांति वर्धन की आवश्यकता व्यक्त करता हुआ दिखाई देता है और इसी भूमिका में महावीर ने जो अपना मत व्यक्त किया वह जैनधर्म का मूल रूप-सा बन गया। जैन धर्म के विकास-क्रम की दृष्टि से आचारारण के प्रथम धृतस्कन्ध का विशेष महत्व है।

आचारारण के द्वितीय धृतस्कन्ध में १६ अवयव, ३४ उद्देशक, ४ चूलिका, १७६ सूत्र और ३६ शाखाएँ हैं। समय के अनुसार उत्तर काल में हमने परिवर्तन-परिवर्धन हुआ है। यहाँ आहार, वस्त्रा, माया, पाप, अवग्रह, मलमूत्र विमर्जन, शयन-ध्वज, आदि सदमों में विस्तार से विवेचन किया गया है। यहाँ यह भी कहा गया है कि मिश्र को जुगुप्सित कुलो में मिश्रा के लिए नहीं जाना चाहिए। नृतिवार ने इन जुगुप्सित कुलो में चर्मकार और दागों की गणना की है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इस समय तक जैनधर्म में उच्च कुल और नीच कुल की भावना का विकास हो गया होगा।

जैन मिश्र को सगडि (मासूहिन मोक्षण) कराने वाले घर से मिश्रा लेना निषिद्ध है। यदि वह वह जान से कि वही का मोक्षण मान प्रदान, सत्य प्रदान अथवा शुद्ध मांस, शुद्ध मत्स्य सम्बन्धी तथा मूलन वधु-प्रवेश के अवसर पर अथवा दितृग्रह में वधु के पुनः प्रवेश करने पर बनाया गया है अथवा मूलन सम्बन्धी मोक्षण हो या यदादि की यात्रा के निमित्त बनाया गया हो एवं परिजनो वा मित्रो के निमित्त तैयार किया गया हो तो ऐसी सगडियों में समयसीध मिश्र को आहार नहीं करना चाहिए। परन्तु वह यह समझे कि वहाँ जाने में हरित वाय आदि जीवों की विगणना नहीं होगी और समय की रक्षा हो सकेगी तो उस गगदी से आहार ग्रहण कर सकता है।^{११} शारीरिक दुर्बलता आदि भी अखाद के निमित्त के सूचक हैं।

इसी उद्देशक में इस प्रकार के और भी उल्लेख मिलते हैं जिनमें मांस-मदरा की बर्त्तना समिहित है। उदाहरण के तौर पर सूत्र क्रमांक २४ में लिखा है कि यदि कोई स्थिरवामी मिश्र अतिथि अथवा मांसरूपी मिश्रुओं से यह कहे कि अमुक घाम में हमारे अमुक गन्धन्धो रहने हैं। उनके यहाँ से आप दूध, दही, मक्खन, घी, गुड़, तेल, शहद, मद्य, मांस, जनेबी, ओखड़, पुखी आदि जो भी चाहें, भिजा में से आयेँ तो यह उचित नहीं।^{२२} यहाँ साध पदार्थों में शहद, मद्य और मांस का भी उल्लेख है। कृतिकार^{२३} ने इसे स्पष्ट करने हुए लिखा है कि यदि कोई मिश्र प्रमादी हो अथवा सात्वती हो तो वह इन पदार्थों को ग्रहण कर भी सकता है। वर्तमान में अपवाद सूत्र के रूप में इसका व्याख्यान किया गया है, पर बेचरदास दोषी ने उसे उत्तम सूत्र माना है।^{२४}

इसी प्रकार प्रथम अप्ययन के ही उद्देशक आचाराय सूत्र ४६ में धमण मिश्र के लिए पुराने मधु और मद्य को लेने का निषेध किया गया है। इसका तात्पर्य है कि वह ताजा मद्य और मधु ग्रहण कर सकता है। यह भी उत्तम सूत्र होना चाहिए।

आगे के उद्देशक १०, सूत्र १८ में यह बताया है कि यदि कहीं पर अतिथि के लिए मांस अथवा मछली पकायी जाती हो अथवा तेल में पुएँ तले जाते हों तो मिश्रु लालचका लेने में जाये। पर यदि मिश्रु रोगग्रस्त है तो वह उसे ग्रहण कर सकता है। इसी तरह वह भी यहाँ बताया गया है कि मिश्रु को अस्थि-बहुल मांस या कटक-बहुल मछली ग्रहण नहीं करनी चाहिए। यदि कोई शूद्रस्थ यह कहे कि क्या आप ऐसा मांस या मत्स्य ग्रहण करेंगे? तो मिश्रु यह उत्तर दे कि यदि तुम मुझे यह देना चाहते हो तो केवल पुद्गल भाग दो और अस्थिमाँ तथा काँटे न आयेँ इसका विशेष ध्यान रखो। इतना कहने पर भी यदि शूद्रस्थ अस्थि-बहुल मांस या कटक-बहुल मत्स्य दे तो उसे लेकर एकांत स्थान में आकर किसी निर्दोष स्थान पर बैठकर मांस और मछली नाकर बची हुई अस्थियों और काँटों को निर्जीव स्थान में डाल दे। यहाँ भी मांस और मछली भक्षण का स्पष्ट उल्लेख है (मत्स्य मच्छाद्य शुब्बा अद्रियाद् कटए गहाय मे समायाय एतमवकमिञ्जा)। कृतिकार धीलाक भी दृष्टि में यह विधान किसी अश्वे वच के उपदेश से सूत्रा आदि रोग के शांत करने के लिए किया गया है।

२२ अविय इत्थं लभिस्सामि पिडं वा सोयं वा सीरं वा दहिं वा नवणीयं वा घयं वा गुल्लं वा तिल्लं वा महुं वा मग्गं वा मसं वा—तं नो एव कारिज्जा।
वही २४।

२३ अथवा कश्चित् अति प्रमादावनुबन्ध. अत्यन्तशुष्कानुवा मधुमद्य मासाति अपि वाधुपेत्
अतः सनुपादानम्—आचारायवृत्ति पृ० ३०६।

२४ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० ११५।

दिया है।^{२०} आचार्य ने यद्यपि लहाववा जैसे परमनों से सम्बद्ध चीजों का उल्लेख मिलता है पर उनका लच्छन वहाँ दिखाई नहीं देता। सूत्रकृतांग में उनका स्पष्टतः लच्छन दिया गया है और साथ ही उन्हें मिथ्या, आश्रमी, प्रमादी और विषयासक्त भी कहा गया है। इससे ऐसा लगता है कि ~~का~~ लच्छन-लच्छन की परम्परा को लेकर सामने आया। इसमें वाद-विवाद की सीमा भी प्रतिबिम्बित हो रही है। मद्र बाहु ने इस पर निर्वृत्ति ली। इस पर एक चुर्ली ओ मिलनी है। बाह्यगिणि की गहायना से शीलाक ने टीका ली है। ह्यंहुम और साधुरव को दीर्घायें भी मिलनी है।

सूत्रकृतांग के प्रथम ध्यनस्थान में सोनह अध्ययन और लक्ष्मी उद्देश है। आचार्य ने गद्यांग अधिक है पर सूत्रकृतांग में पद्यांग अधिक है। प्रथम ध्यनस्थान तो प्रायः पद्यात्मक हो है। गद्यसूत्र ४ और पद्य सूत्र ६३१ है। इसके लक्ष्य अध्ययन इस प्रकार है—ममय, वैतानीय, उरमर्ग, स्त्रीपरिज्ञा, मरव, बीरानुति, कुलीन परिभाषा, बीर्य, धर्म, समानि, मायं, समस्तारव, पाषाणध्य, उन्ध(परिग्रह), आशान, गाथा, पुष्टरीक, क्रियास्थान, आहारक परिषाण, प्रत्यास्थान, अन्तारगुणकीतिश्रुत, आश्रयीय और नालगदा। ममय अध्ययन में चक्षुमहाभुनबाद, आग्याहृतबाद, अवारवबाद, आरम-पल्लबाद, नियतिबाद, अज्ञानबाद, ज्ञानबाद, क्रियाबाद आदि मिथ्याओं का जैन दृष्टि से लच्छन-लच्छन दिया गया है। उग्ररवासीन जैन साहित्य इन बाधों के लच्छन-लच्छन से मरा हुआ है। उसकी लच्छनारमक सीमा के देलने से ऐसा लगता है कि लेखकों ने सूत्र-कृतांग में उठाये गये तर्कों का भरपूर उपयोग किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुरुवार ने बौद्ध धर्म के त्रिषावाद का लच्छन करने हुए उसकी अहिंसा की ध्यास्या की और फिर उनकी कटु आलोचना की है। इसने यह पता चलता है कि तब तक बौद्ध धर्म में मांस-मद्यन प्रारम्भ हो गया था और जैन धर्म उल्लेख दूर था। महारामा बुद्ध बीगा वारणिक महापुरुष मांस-मद्यन की अनुमति नहीं दे सकता। विनिटक जैसे ही थीलवा में पहुँचा कि कहीं की लच्छुनि और औपौलिक स्थिति के अनुकूल उताम परिवर्तन अपेक्षित हो गया। सम्भव है, समुल निवार की रूपक क्या का आधार लेकर बौद्ध धर्म में मांस-मद्यन का प्रवेश हुआ हो। बौद्धदर्शन में मानसिक गलत्य ही हिंसा का कारण है पर जैनदर्शन मानसिक के साथ कर्मिक और बाह्यिक को भी जोड़ देता है।

वैतानीय अध्ययन में रागद्वेषादि विकारों से निर्मुक्त होने के मार्ग पर विचार दिया गया है। यही रात्रि भोजन विरमण व्रत का भी उल्लेख है। सूत्रकृतांग के चोर न्नुनि नामक अध्ययन में भी इसका निवेद्य किया गया है। रात्रि-भोजन निवेद्य का यह

२७ सूत्रकृतांग निर्मुक्ति, भाषा १८-१६।

२८ जैन साहित्य का सुहृद् इतिहास भाग १, पृ० १३३।

प्राचीनतम उद्देश्य है। उत्तरकाल में इस पर और अधिक जोर दिया गया और इसे अष्टमूलगुणों में भी वर्णित किया गया। वीर स्तुति अध्ययन में इसे महावीर का विशेष योगदान कहा गया है।

उपरोक्त अध्ययन में साधनकाल में आगत, बाह्य और अन्तरंग उपमणों का विवेचन किया गया है। इसमें कुछ ऐसी मापदण्ड अधिक हैं जो उत्तरकालीन सन्तों हैं। जैसे तृतीय उद्देशक की १६-१७ वीं वाक्या में कहा गया है कि साधुओं को दानादि देकर उनका उपचार करने का अधिकार गृहस्थों का है पर गृहस्थों के लिए इस प्रकार का कोई उपकार साधुओं द्वारा नहीं किया जाना चाहिए।^{२१} कृतिकार ने इस बात को आजीविक सम्प्रदाय तथा दिगम्बर सम्प्रदाय से संबद्ध किया है। लगभग समूचे उद्देशक में इन दोनों सम्प्रदायों की अवलोकना की गयी है। अतः यह उद्देशक इस प्रश्न में प्रथम शती के आस-पास जोड़ा गया होगा।

इसी अध्ययन के अनुसार उद्देशक में वैदिक सभ्यता में माग्य कतिपय महापुरुषों का ससम्मान उल्लेख किया गया है और उन्हें मित्र तथा भर्तृ बताया गया है। ऐसे महापुरुषों में नमिराज, रामगुप्त, बाहुक, नारायण, आसिल, देवल, द्वेपायन तथा मारारार ऋषि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें रामगुप्त नाम पर बिचार किया जाना आवश्यक है। मयादि पुरुषोत्तम राम जैन सम्प्रदाय में भी उतने ही पूज्य हैं जितने वैदिक सम्प्रदाय में। पर उनके साथ गुप्त शब्द का प्रयोग किसी साहित्य में देखने को नहीं मिलता। ऐसा लगता है, यह रामगुप्त—समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र होना चाहिए जिसे मारकर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने राज्य हस्तगत किया था। यह समय ईसा की चतुर्थ शती का अंतिम काल होना चाहिए। समुद्रगुप्त का शासन लगभग ३७५ ई० तक रहा। इसके बाद कुछ वर्षों तक रामगुप्त ने शासन किया। अतः सूत्रकृता का लेखन काल इसके बाद ही आना चाहिए। ऐसा लगता है कि रामगुप्त उत्तरकाल में शक्तिप्रिय जैन धर्मावलम्बी रहा होगा और समर्थ है कि यह यतिवत् भी जीवन व्यतीत करता रहा है। सूत्रकृता में उसे आहार त्याकर सिद्धि प्राप्त करने वाला ऋषि बताया गया है। पर जैनतर ग्रन्थों में उसकी कायर तक कहा गया है। म० प्र० से प्राप्त चन्द्रप्रभु और पुण्यदेव की मूर्तियों के पादपीठों पर उत्कीर्ण अभिलेखों में भी रामगुप्त का उल्लेख आया है। अतः इससे रामगुप्त की ऐतिहासिकता भी सिद्ध हो जाती है। यह समर्थ है कि आध्यात्मिक साधना की ओर विशेष लक्ष्य रहने से रामगुप्त अपने प्रशासन की ओर ध्यान न दे सका हो और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इसका लाभ उठाकर अपने भाई का बंध कर दिया हो और राज्य सूत्र अपने हाथ में ले लिया हो।

पासाय सम्प्रदाय की आधारगत विधिलता को दूर करने की दृष्टि से महावीर

२१ धम्मपन्नमणा आ ता मारमा ण विसोद्धिया।

त उ एयाहि दिट्ठीह पुब्बमानि पगप्पिअ।।

—सूत्र ३-३-१६

मे धानुर्वास के स्थान पर पञ्चमहाग्र्यों की स्थापना की। वीर स्तुति अध्ययन मे महा-वीर के इस योगदान का विशेष उल्लेख हुआ है।

‘पुरिमोगणियो धम्मो’ मानकर समुची स्वीपरिज्ञा मे स्त्रियों की घनघोर निन्दा की गयी है और उन्हें वैराग्य मार्ग से पणित कराने में प्रभुग कारण माना गया है। वैराग्यता में बुद्ध के भुग से भी ऐसे ही विचारों का प्रतिपादन किया गया। यदि महावीर और बुद्ध को नारी पणित को उद्धारक कहा जाय तो वे सारे उद्धारण उत्तर-वासीन भगने भगने हैं; जबकि नारी को भोग्या माना जाने लगा। इसी प्रकार वीर स्तुति अध्ययन भी बाद मे छोड़ा गया होगा।

प्रथम धनुत्तरकथ के अग्य अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। उनमें अग्य सम्प्रदायों के आचार-विचारों पर समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। इसमें १४वाँ अध्ययन विशेष दृष्टव्य है जहाँ स्वाहाद मित्रागत के बीच देते का मन्ते हैं। ‘आ या ऽमियावाय विद्यानरेज्जा’ जैसे पद्यों में भाषा समिति का मन्ते है और मियावाय का निवेदात्मक रूप अमियावाय शब्द स्वाहाद से मन्ते है।^{३०} इसी का विशेषात्मक रूप लक्ष्यों में मियावाय शब्द का प्रयोग स्वाहाद के रूप में होने लगा पर विमर्शवाय और शीतल्य-हार में उठ गया। बुद्ध ने भी स्वयं को विमर्शवादी कहा है पर वहाँ भी यह शब्द अधिक समय तक स्थिर नहीं रहा।

सूत्रहर्षण का द्वितीय धनुत्तरकथ प्रथम धनुत्तरकथ पर आधारित है। जो बुद्ध प्रथम धनुत्तरकथ में नहीं कहा गया उसे वहाँ कह दिया गया। वस्तुतः यह उत्तराध्यात्म्य भाग रहा है। कृतिहार ने भी इसे स्वीकार किया है। इसमें सात अध्ययन हैं जिसमें पाँचवाँ और छठवाँ अध्ययन छोड़ कर सेय सभी अध्ययन सहात्मक हैं। मध्य सूत्र ८३ है और पद्य सूत्र ८८ है।

इस धनुत्तरकथ मे विभिन्न दृष्टियों से अहिंसा की व्याख्या की गयी है। हिंसा के कारणों पर प्रकाश डालने हुए बौद्धधर्म मे प्रतिपादित अहिंसा से जैनधर्म की अहिंसा में वैशिष्ट्य बताया है। आर्यक अध्ययन मे भगवान महावीर और गोशालक आदि तीर्थंकरों के संबंध पर विचार किया गया है। आर्यक का उनसे सादरार्थ भी हुआ। इसी तरह नागमंडा अध्ययन मे वादर्वापत्तीय उदय वेहासगुल का सादरार्थ गौतम गणपद से हुआ जिससे पता चलता है कि वादर्वापत्तीय परंपरा के अनुयायियों ने महावीर की परम्परा की सरलतापूर्वक स्वीकार नहीं किया।

३. टाणीग (स्थानीग)

स्थानीग एक बोझ है जिसे मर्यादात्मक प्रणाली में हम स्थानों में विभाजित किया गया है। वे इस स्थान इक्कीग उद्देश्यों में विभक्त हैं। इसमें ७८३ मध्यमूत्र

और १६६ पद्यगुण हैं। दिगम्बर परम्परानुसार इसमें ४२००० पद और श्लोकपर परम्परानुसार ७२००० पद हैं। मागधरगण कोश का निर्माण बाद में ही होता है। अतः यह अतिरिक्त समर्थ है कि स्थानाग की रचना अन्य अर्थों की रचना के बाद हो हुई होगी। अमरदेव मूरि (ई० १०६३) ने इस पर टीका लिखी है। स्मरण और धारणा की सुविधा की दृष्टि से ही विगम को कोई एक छत्र देकर निबद्ध कर दिया जाता है। निबद्धकर्ता के समस्त यह कठिनाई जाती है कि वह किस परम्परा को स्वीकार करे। स्थानाग मूल के अंग में दी गई प्रज्ञप्ति से मरुमनकर्ता की इस समस्या को समझा जा सकता है।

इस अंग में वर्णित विषयगुणों को देखने से ऐसा लगता है कि यह ग्रन्थ समय-समय पर परिवर्तित-परिवर्धित होता रहा है। उदाहरण, सात निह्णवों का यह उल्लेख है—आमाति, तिष्युगुप्त, आयाङ्ग, अश्वमिष, मग, रोहगुप्त और मोष्ठाभाहित। निह्णव का तात्पर्य है—सत्य का अस्वाभाव करने वाला। दिगम्बर सम्प्रदाय में इनका कोई उल्लेख नहीं। हम यह जानते हैं कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में आमाति और तिष्य गुप्त को छोड़कर दोष निह्णवों की उत्पत्ति महावीर के निर्वाण के बाद तृतीय छाती से लेकर छठी-मातवीं छाती तक हुई है। बाद में आठवें निह्णव के रूप में दिगम्बर (बौद्धिक) सम्प्रदाय की भी उत्पत्ति बता दी। स्थानाग में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

इसी प्रकार यही महावीर के नव गणों का उल्लेख किया गया है—शोकासगण, उत्तरबलिस्तहगण, उह्हगण, चारणगण, ऋषुधानितगण, विस्सवातितगण, बामहिडितगण, माणवगण और क्रोडितगण। इन गणों की उत्पत्ति महावीर-निर्वाण के लगभग पाँच सौ वर्ष बाद तक हुई।

स्थानाग में चार प्रज्ञप्तियों का निर्देश है—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति। इनमें प्रथम तीन प्रज्ञप्तियों का समावेश उपार्णों में कर दिया गया। द्वीपसागर प्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ अनुपलब्ध है। दिगम्बर सम्प्रदाय में चारों प्रज्ञप्तियों की दृष्टिवाद के परिकल्प के अन्तर्गत रखा गया है।

स्थानाग में दस दशाग्रन्थों का उल्लेख है—कम्मविवाग्गदसाग्रो, उवात्तग-दसाग्रो, अतगद्धदसाग्रो, अणुत्तरोक्कनामदसाग्रो, आयाददसाग्रो, पण्हावागरणदसाग्रो, बंपदसाग्रो, दोगिद्धीदसाग्रो, दीहदसाग्रो और सखेवित्तदसाग्रो। इनमें कम्मविवाग्गदसाग्रो का सम्बन्ध ग्यारहवें अंग विपाकसूत्र से है। आयाददसाग्रो छन्दसूत्रों का दशा धृतस्कन्ध है। उवात्तगदसाग्रो, अतगद्धदसाग्रो, अणुत्तरोक्कनामदसाग्रो और पण्हावागरणदसाग्रो ये अंग ग्रन्थ हैं। शेष दसाग्रन्थों से टीकाकार भी अपरिचित हैं। उपलब्ध दसाग्रन्थों के जिन अध्ययनों का यहाँ नामोल्लेख मिलता है वे अध्ययन उपलब्ध नामों से भिन्न हैं।^{१९}

इन अममनियों से ऐसा लगता है कि स्थानाग के मूलरूप में यथासमय

परिवर्तन होता रहा है। परिवर्षण को देखते हुए इनका समय ईसा की भगमम चतुर्थ-पचम शती निर्दिष्ट की जा सकती है।^{१३}

४. समवायांग

स्वानाग की शैली में ही समवायांग की रचना हुई। इसमें सभी पद्यांशों का समवाय (मण्ड) किया गया है। इसमें एक से लेकर बीसवीं सत्या तक की वस्तुओं का सप्रह दृशा है। दिग्दर्शकों के अनुसार इसमें एक सप्ताह चौमठ हजार पद से पर श्वेताम्बर परम्परानुसार एक लाख अक्षरों से हजार पद से। इसमें मद्यमूत्र १६० और पद्यमूत्र ९० है।

इस अंग ग्रन्थ की विषय श्रुति को देखने से पता चलता है कि इसमें महाभारत निर्वाण के बाकी बाद की घटनाओं को भी संकल्पित कर दिया गया है। उदाहरणार्थ—यहाँ १०० वें सूत्र में इन्द्रभृति और मुचर्षा के निर्वाण का उल्लेख है जबकि उनका निर्वाण महाभारत के निर्वाण के बाद हुआ। इसी प्रकार उत्तराध्यायन, कापमूत्र, श्रुति-मानित, प्रवीणक, मन्दीमूत्र आदि उत्तरकालीन ग्रन्थों का उल्लेख समवायांग में हुआ है। अतः इसका भी समय ईसा की भगमम पचम शती माना जाना चाहिए। देवर्षि शनि क्षमाश्रमण के समय तक इसमें जो जो सुद्धता गया उस सभी का लक्षन मध्य का ध्यान रहे बिना ही कर दिया गया।

स्वानाग और समवायांग की दोसी बीस पाति विपिठक के अगुसरनिकाय तथा पुगलपञ्चजति से मिलती-जुलती है। इसमें सबलित विषय परस्पर सम्बद्ध नहीं। सत्या-रम्भ दृष्टि से जो विषय जब भी ध्यान में आया, सबलन कर दिया। सामग्री इसमें बहुत है पर वह मुख्यस्थित और यथाकामिक नहीं।

५. विशाहपञ्चजति (व्याख्यापञ्चजति)

अंग ग्रन्थों में यह ग्रन्थ अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए इसे भगवती सूत्र कहा गया है। अमयदेव सूरि ने वि० स० ११३८ में इस पर टीका लिखी और दानसेनर ने मधुभृति की रचना की। अमयदेव ने इसका अर्थ अनेक प्रकार से लिखा है जिससे पता चलता है कि इसका सम्बन्ध भगवान महावीर और उनके शिष्यों से रहा है। इसमें गौतम के ग्रन्थ और महावीर के उत्तर संकल्पित हुए हैं। इन ग्रन्थोत्तरों की संख्या श्वेताम्बर परम्परानुसार ३६००० है पर तन्वार्थवार्तिक (१, २०) में यह संख्या ६०००० बतायी गयी है। अतएव, अवान्तर शतक १३८ है जो १६२७ उद्देगको में विभक्त है। इन शतकों में सी मा कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। इसमें मद्यमूत्र ५२६३ और पद्यमूत्र ७२ है।

इसका प्रारम्भ अन्य ग्रन्थों की व्यपेक्षा सर्वाचीनता लिए अधिक प्रतीत होता

है। इनके पूर्व के धर्मों में कोई मन्त्रागार नहीं जबकि यहाँ लोग ने 'नमो अग्निनाम' आदि श्लोकों में समन किया, बाद में एक विषय गृहिणा गाथा दी और पुनः नमो मुख्य विगारर एवं प्रारम्भ किया।^{१३} बाद में प्रारम्भों श्रेणिक का उल्लेख करो हुए मन्त्रान महावीर और गौतम मन्त्रान की गुणगुणि की गई।

इन धर्म की विषय गृही बड़ी सम्बन्धी-बोरी है। इसमें महावीर और पार्श्व-पत्नी परम्परा का सम्बन्ध वर्णित है। योगाग्य का वर्णन कुछ अधिक विगारर से विगार है। उनके द्वा दिशापर सिध्यों का भी उल्लेख है—धात, कर्म, बगिहार, अग्नि, अग्निवेष्टाधन और गौगामुपुन अर्जुन (टीकाकार ने इनकी मन्त्रान महावीर के पद्यप्रवृत्त सिध्यों में की है और गृहिणा में पागारों में)। तथेन योगाग्य और आजीविक सम्प्रदाय की धनधोर निम्न मिलती है। उनका बरिज अरपग हारवात्पर और पुशात्पर चिनिन किया गया है। सम्भव है, यह प्रतिबुद्धिता के कारण हुआ हो। दुर्भाग्य से आजीविक सम्प्रदाय का कोई साहित्य उपलब्ध नहीं होना अथवा यह गुणि गुलत सकती थी। पर इनका अवश्य है कि यह एक प्रभावक सम्प्रदाय रहा होगा। निमित्तक में उपलब्ध प्रमाणों से भी यही तथ्य सामने आता है।

भगवती की गृही वनस्पतिशास्त्र की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसमें विविध फल वनस्पतियों आदि के नामादि गिनाये गये हैं। उनमें आनुभ शब्द द्रष्टव्य है जो वर्तमान में प्रचलित आयु का समानार्थक समता है।

लोकहर्ष और अटारहर्ष शतको में वर्णित घटनाओं का सम्बन्ध मुनिगुप्त का आदि तीर्थकरों से जोड़ा गया है और कुछ उत्तरकाल में वर्णित घटनाओं का भी यहाँ समावेश कर दिया गया है। उदाहरण के लो पर यहाँ 'जवगिज' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका सम्बन्ध वापनीय सध से स्थापित किया जा सकता है।

हम जानते हैं कि वापनीय सध दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय का मिश्रित रूप-ना था। उसकी उत्पत्ति दर्शनसार के अनुसार द्वितीय शताब्दी के आस-पास होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि इसमें समभव प्रथम-द्वितीय शती की घटनाएँ भी समाविष्ट हुई हैं। पर यह आश्चर्य का विषय है कि इसमें जैनतर तापसों और परि-प्राज्ञकों का उल्लेख करते समय थोड़े सम्प्रदाय का कोई उल्लेख नहीं। इसी प्रकार अकलंक ने 'व्याख्या प्रज्ञप्तिदण्डकेयु' लिखकर उसके दण्डक नामक अधिकारों का उल्लेख किया है पर उपसम्ब व्याख्या प्रज्ञप्ति में इस प्रकार का कोई दण्डक नहीं मिलता। जिस सम्दर्भ में इसका उल्लेख किया गया है वह विषय २४वें शतक के बादसर्व उद्देशक के २६-२७वें प्रश्नोत्तर में अवश्य उपसम्ब होता है। सम्भव है, दण्डक में इन विषय का विवेचन और अधिक विस्तार से रहा हो।

६ भाषाधर्मकहाओ (भाषाधर्मकहाओ)

नन्दीमुख के अनुसार हममें जानों के मन्त्रों, उद्यानों, वैश्यों, वनस्पतियों, भगवान के समस्तपरम, राजा, माता-पिता, धर्मार्थ, धर्मकथा, इत्येव और धर्मोप-सम्बन्धी अतिविशेष, मोक्षों का परिष्कार, दीक्षा, धर्म, धर्म का अध्ययन, उपपातन, मनेनना, मत्त-प्रपास्यान, पादपोषण, देवलोका में जाना, पुनः पुनः में उत्पन्न होना, पुनः सम्पन्न की प्राप्ति का नाम और फिर अन्त-विशेष कर मोक्ष की प्राप्ति इत्यादि विषयों का वर्णन है । तत्पश्चात् धर्म और धर्मप्रदान के अनुसार हममें आचार्यों और उपाचार्यों का वर्णन है ।^{१४}

भाषाधर्मकहाओ में दो अनुसूचक हैं । प्रथम अनुसूचक का नाम ज्ञान अनुसूचक है जिसमें १६ अध्याय, ११ उद्देशक, १४७ पद्यपुत्र और १९ पद्यपुत्र हैं । द्वितीय अनुसूचक कथाधर्मकहाओ है जिसमें १० वक्त्र, २०६ अध्याय, १२ पद्यपुत्र और ९ पद्यपुत्र हैं । अथर्ववेदमूर्ति में हम एक टीका मिली है ।

हम हम में अथर्वपुराण, मथुरापुराण, धर्म मार्गकहाओ, जैन, धर्म परिष्कारकहाओ महापुराणों की कथाओं वर्णित हैं । इन कथाओं के पीछे एक सुन्दर भूमिका और उद्देश्य वर्णित है । जैनधर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए इन कथाओं का उपयोग किया गया है । कथाओं के बीच में ही विविध विषयों से सम्बन्ध सामग्री उत्पन्न हुई है । आठवें अध्याय में 'वीरविमिश्रकथा' के रूप में तीन पद्य का प्रयोग हुआ है । यह पद्य भाषाधर्मकहाओ की द्वितीय-तृतीय पद्यावली का निर्दिष्ट करने के लिए वाध्य कथा है ।

दुसरा अनुसूचक विषय और जैनी की दृष्टि में प्रथम अनुसूचक में विस्तृत विवरण मिलता है । नन्दी और समकालीन के अनुसार प्रत्येक धर्मकथा में ५००-५०० आख्यायिकाएँ, प्रत्येक आख्यायिका में पाँच-पाँच ही उपारथायिकाएँ और प्रत्येक उपारथायिका में पाँच-पाँच ही आख्यायिका—उपाख्यायिकाएँ हैं । परन्तु वर्तमान में उपलब्ध भाषाधर्मकहाओ में इनकी कथाएँ नहीं हैं ।

७. उपासकवक्ता (उपासकवक्ता)

नन्दीमुख के अनुसार हममें अमनोपामर्शों के मन्त्र, उद्यान, ध्यन्तरायन, वनस्पति, समस्तपरम, राजा, माता-पिता, धर्मार्थ, धर्मकथा, इत्येव-परमोक्त की अतिविशेष, अन्तरायन, दीक्षा, धर्म की धर्म आदि का वर्णन है ।

हमें हम अध्ययन और हम उद्देशक हैं । समूचा भूत पद्यपुत्र है । प्रत्येक अध्ययन में भगवान महावीर के एक-एक उपासक का वर्णन है । हम प्रकार हम उपासकों का महाचरित्र-विवरण मिलता है । आनन्द, कामदेव, धृतिनीपिता, मुरा-देव, धुम्पलन, मुम्पलनिक, महापुत्र, महापुत्र, नन्दिनीपिता और मानिही-

अनुस्तर का तात्पर्य है श्रेष्ठतम विमान । जैनधर्म में नवसंवेधक विमानों के ऊपर विजय, वंशयन्त्र, जयन्त, अपराजित एवं सर्वार्थमिद्धि ये पाँच अनुस्तर विमान हैं । उन्हें अनुस्तरौपातिक कहा जाता है । इन सूत्र में ऐसे ही अनुस्तरौपातिकों की अवस्था का वर्णन मिलता है ।

१०. पद्मभाष्यप्रकाश (प्रश्नव्याकरणम्)

इसमें रचाना के अनुसार दस अध्याय हैं—उपमा, ताव्या, श्रुतिमापित, आचार्य आपित, महावीर आपित, सोमक प्रश्न, सोमल प्रश्न, महाग प्रश्न, अगुष्ट प्रश्न, और बाहु प्रश्न । (सगवावाण और मन्दीगूत्र के अनुसार इसमें १०८ प्रश्न, १०८ अप्रश्न एवं १०८ प्रश्नाप्रश्न हैं जो सगविद्या तथा अनुष्टप्रश्न, बाहुप्रश्न, दर्पणप्रश्न आदि क्रियाओं से सम्बन्धित हैं । इसमें ४५ अध्याय हैं ।

तत्त्वार्थवातिक के अनुसार आर्लोष और विशेष के द्वारा हेतु और नय के प्रश्नों के व्याकरण को प्रश्नव्याकरण कहते हैं । उनमें लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया जाता है । पद्मभाष्य के अनुसार इसमें आर्लोषणी, विशेषणी, सवेदनी और निर्वेदनी—इन चार कथाओं का निरूपण हुआ है । इसमें नष्ट, भुष्टि, चिन्ता, साम, अलाम, मुन, दुःख, जीवित, मरण, जम, पराजय, नाश, द्रव्य, आद्य और संख्या का भी वर्णन मिलता है ।

वर्तमान में उपलब्ध प्रश्न व्याकरण उपर्युक्त प्रश्नव्याकरण से ब्रह्मकुल भिन्न है । इसमें न तो पूर्वोक्तलिखित विषय सामग्री ही है और न ४५ अध्याय ही हैं । यहाँ तो हिमादि पक्ष आसनों और अहिमादि पक्ष सबरों का वर्णन है । इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उल्लिखित प्रश्नव्याकरण और उपलब्ध प्रश्नव्याकरण एक दूसरे से भिन्न नहीं आते ।

अमरदेव ने इस ग्रन्थ पर कृति लिखी है । उन्होंने प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया कि इस ग्रन्थ की प्रायः बूट प्रतिमाँ उपलब्ध होती हैं । अतः उसकी अर्थ-सौजन्यता सावधानीपूर्वक करनी चाहिए । अन्त में वे यह भी गहव्रतावस यह उठे कि त्रिनके पास आम्नाय नहीं है उन हमारे जैसे लोगों के लिए इस शास्त्र का अर्थ समझना कठिन है । अतः हमने यहाँ जो अर्थ दिया है, वह ठीक है, ऐसी बात नहीं है । कृति-कार का यह कथन स्पष्ट सकेन करता है कि परम्परागत ग्रन्थ सुप्त हो चुका था । उपलब्ध प्रतिमाँ भी विद्वन्मनीय नहीं थी । अमरदेव के अनुसार चमत्कारी विद्याओं का दुष्टयोग न हो, इस मय से उन्हें निवानकर उनके स्थान पर आस्रव और मवर का समावेश कर दिया गया । जो भी हो, पर यह निश्चित है कि उपलब्ध प्रश्नव्याकरण तृतीय शतुर्ष शताब्दी के आस्रवान सचलित किया गया होगा ।

११. विवागमुय (विपाक सूत्र)

मन्दीगूत्र, तत्त्वार्थवातिक, पद्मभाष्य आदि ग्रन्थों के अनुसार इसमें पुष्प

और पाप के विपाक का विचार किया गया है। इसमें दो अध्ययन हैं जिनमें दुःखविपाक और गुणविपाक का वर्णन मिलता है। प्रत्येक अध्ययन के दस प्रकरण हैं। इनमें आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल, जला आदि से सबद्ध सामग्री सन्निहित है। स्थानों में दुःखविपाक के दस अध्ययनों के नाम मिलते हैं—मृगाशुन, गोशम, अड, शर, बालाग, नन्दिपेण, शीर्ष, उदुम्बर, सहस्रोदाह-आमरक और नृगार निन्दवी। उपरान्त विपाक गूत्र में इन नामों से कुछ भिन्न नाम मिलते हैं। यहाँ गुणविपाक में अध्ययनों का कोई नामोल्लेख नहीं।

१२. द्रिष्टिवाए (द्रष्टिवाद)

द्रष्टिवाद बारहवाँ अंग था जो अत्यन्त विचाल और महत्त्वपूर्ण था। इसे आज मुक्त हुआ मान लिया गया है। तत्त्वार्थ राजवातिक के अनुसार इसमें ३९३ द्रष्टियों के भवों का निरूपणपूर्वक सङ्ग्रह है। इनमें कौत्सक, कर्णविष्ठ, कौशिक, हरिमण्ड, माधुरिक, दोमश, हारीन, मुण्ड, आश्वसायन, आदि क्रियावादियों के १८० भेद हैं। मरीचिभुमार, बलिल, उन्मूलक, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वादवि, माठर, मौद्गल्यायन आदि अक्रियावादियों के ८४ प्रकार हैं। साकल्य, बाला, कुयुमि, सात्यमुष, नारायण, बड, माध्यन्दिन, मोद, वैष्णवाद, बादरायण, अम्बष्ठि, वृद्धीविकायन, वरगु, जैमिनि आदि अज्ञानवादियों के ९७ भेद हैं। बलिष्ठ, पाराशर, जनुकणि, बान्मीरि, रोमहर्षिणि, गण्यदन, व्यास, गणानुष, औपमन्यव, दग्गदत्त, अयस्वज आदि वैतण्ड्यियों के १२ भेद हैं।

द्रष्टिवाद की मन्दीमूल में भी समस्त नव द्रष्टियों का बचन करने वाला सूत्र कहा है। तत्त्वार्थवातिक के समान इसमें भी इसके पौंच भेद बताये गये हैं—परिचय, मूल, अनुयोग, पूर्वगत और क्षुतिता। परिचय मान प्रकार का है—गिच्छप्रेमिका, मनुष्य, वृष्ट, अहम्, उपागमादन, विप्रमद और क्षुताक्षुतधेमिका। इन परिचयों के पुन भेद दिये गये हैं। मूल के २२ भेद हैं—अनु, परिणामपरिणत, बहुमविष्ट, विप्र-परित, अनन्तर, परमाण, अज्ञान, लघुष, लघिन्न, यथाचार, स्वमिच्छार्थ, मन्दावर्त, बहुष, पुण्डागृष्ट, व्यावर्त, लघुपुन, द्विचार्य, सर्वमानाद, लघुमिच्छा, सर्वगोचर, प्रसिन्न और पुनरिच्छा। अनुयोग के दो भेद हैं—मूल प्रथमानुयोग और मोक्षप्रानुयोग। क्षुतिता के पाँच भेद हैं—अनवता, अववता, मायावता, कवता और आशानवता। प्रथम चार गुणों में क्षुतिताएँ हैं, पाँच में नहीं। पूर्व के १४ भेद हैं—

१ उपागमपूर्व—इसमें जीव पुनरादि का यही जैसा उपागम होता है, उस तरह वर्णन है। इसमें एक करोड़ पद हैं।

२ अज्ञानवीर पूर्व—द्रिष्टिवाद आदि की द्रिष्टिया और स्वमन्त्र का विवरण है मूल और पूर्वों का बचन है। इसमें ६९ भाग पद हैं।

३ कौशिकपूर्व—सुखस्य और केवली की शक्ति, गूण-अगूण आदि की शक्ति, बन्धन-वर्णन, बन्धन-वर्णन की लक्षण्य, द्रव्यों के भक्षण आदि का विवरण है। इसमें ३० भाग पद हैं।

४. अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व—पौषो अस्तिकायो वा और भयो का अस्तिनास्ति आदि अनेक पर्यायों द्वारा विवेचन है। इसके ६० सात पद हैं।

५. ज्ञानप्रवाद पूर्व—पौषो ज्ञानो और इन्द्रियो का विमान आदि निष्पन्न है। एक कम एक कोटि इसके पद हैं।

६. सत्यप्रवादपूर्व—वचन मुक्ति, वचन सरकार के कारण, वचन-प्रयोग, बारह प्रकार की मायाएँ, दस प्रकार के माय, वस्तु के प्रकार आदि का विमल में विवेचन है। इसके एक करोड़ ८५ पद हैं।

७. आत्मप्रवादपूर्व—आत्मद्रव्य वा और छ जीवनिवासों का अस्तिनास्ति आदि विविध मतों से निरूपण है। इसमें २६ कोटि पद हैं।

८. कर्मप्रवादपूर्व—कर्म की वक्ष, उत्पत्ति, उपपन्न आदि दशाओं की और स्थिति आदि का वर्णन है। इसमें एक करोड़ अरबो मात्र पद हैं।

९. प्रत्याकषाणपूर्व—अन, नियम, प्रतिक्रमण, लय, धाराधना आदि विगुडि के उपक्रमों का तथा मुनित्व पद के कारणों का और परिमित या अपरिमित द्रव्य और मापों के त्याग का बयन करता है। इसके ८४ लाख पद हैं।

१०. विद्याप्रवादपूर्व—समस्त विद्याओं का, आठ महानिमित्तों का तद्विषयक रज्जुशक्तिविधि, धेन, धेनी, लोहप्रतिष्ठा, तमुदधान आदि का विवेचन है। इसके एक करोड़ दस लाख पद हैं।

११. कल्याणप्रवादपूर्व—सूर्य, चन्द्रमा, वह, मक्षक व ताराग्रहों के गमन, उत्पत्ति, गति का विपरीत कल, सृष्टिनाशन, तथा बर्हन्त, बनदेव आदि महापुरुषों के महाकल्याणों का बयन करता है। इसके २६ करोड़ पद हैं।

१२. प्राणावायुपूर्व—आनुवंश के कार्य विरहना आदि आठ अंगों का, सृष्टि-कर्म का, सृष्टि प्रक्रम का और प्राणावायु का विमल से बयन है। इसके एक करोड़ ५६ लाख पद हैं।

१३. हिप्पाविद्यालपूर्व—लेग आदि बहूतर कलाओं का, स्त्री सम्बन्धी चीमड गुणों का, शिल्प का, काष्ठ के गुण-दोषों का, छन्द रचनाओं का तथा क्रिया के फल के भोक्ताओं का बयन करता है। इसके ६ करोड़ पद हैं।

१४. लोहविन्दुमार—आठ व्यवहार, बार बीज राशि, परिचर्मे आदि गणित तथा समस्त श्रुत सम्पत्ति का विवरण है। इसके साढ़े बारह करोड़ पद हैं।^{३४}

दृष्टिवाद की यह विद्यायन्ता समस्त आगम ग्रन्थों को समाहित किये हुए है। इसमें चौदह पुरों को अधिक महत्त्व दिया गया। दिग्म्बर परम्परा में प्यारह अथवा बारह अंगों और चौदह पुरों की विनिष्ट मान्यता द्रष्टव्य है। श्वेताम्बर परम्परा में

महिला वर्ग को दृष्टिवाद के अध्ययन का अधिकार नहीं दिया गया। यह महा दृष्टिवाद की विनाशिता तथा गहनता का ही कारण रहा होगा।

प्रश्न यह उठता है कि इतना विनाशकारी दृष्टिवाद क्यों बना ? हम पीरे चुके हैं कि किस प्रकार से अगो और पुरो का ज्ञान विलुप्त होता गया। नि परम्परा के अनुसार पुरो का सङ्घः ज्ञान पुण्यदन्त और भूतवति ने सङ्घागम में निबट किया और श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के विश्व एक हजार वर्ष बाद पुरो का सोप हुआ और पुरो के साथ ही दृष्टिवाद का भी हो गया।

दृष्टिवाद का उत्पन्न अगो में समवायान^{३६} में मिलता है और उपागो में पातिक में पउदमपुखी और दुवात्तसगिनी तथा प्रज्ञापना में दिट्ठीवाप और पु पाखी का उत्पन्न हुआ है। अगो के समान उपागो की भी सङ्घा बारह बनाई ग मन्दीसूत्र आदि में दृष्टिवाद की एक विस्तृत सूची मिलती ही है। अतः उस सम दृष्टिवाद किसी न किसी रूप में रहा ही होगा। उत्तरकाल में धीरे-धीरे वह सु गया। लुप्त होने का कारण यह हो सकता है कि समूचा ग्रन्थ दार्शनिक मतमत से भरा हुआ था। दृष्टिवाद की गणना गमिकधृत में की गई है। गमिकधृत सात्वत है—गणधरों द्वारा निमित्त अवस्था भव और गणित आदि से परिपूर्ण। इसलिए उसका कठिन होना स्वाभाविक है, पर दृष्टिवाद के सोप होने में यह। युक्तिगम्यता नहीं लगता। दृष्टिवाद का सोप क्यों और कैसे हुआ, यह पढ़ेगी भी अनुसूची-नी बनी हुई है।

उपागो आदि का समावेश अग बाह्य ग्रन्थों में होता है। उनके का उत्पत्तिक आदि अनेक भेद है। स्वाध्यायकाल में जिनके पठन-पाठन का कोई समय न हो वे उत्पत्तिक हैं। इससे स्पष्ट है कि दृष्टिवाद की कालिक धृत नहीं गया।^{३७}

पदमङ्गलम^{३८} में वर्णना नामक सङ्घ में धृतज्ञान के बीस भेद बताये हैं—पर्वय, पर्वयसमाप्त, अक्षर, अक्षरसमाप्त, पद, पदसमाप्त, समाप्त, समाप्त प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिगमाप्त, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमाप्त, प्राभूत-प्राभूत, प्राभूत समाप्त, प्राभूत, प्राभूतसमाप्त, वस्तु, वस्तुसमाप्त और वृक्ष, पूर्वसमाप्त। बीरसेन^{३९} और अतकाश ग्रन्थों की अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमाप्त में समाविष्ट किया

जैसा हय पीछे देस चुके है ध्यरद्वार आदि भूत के अनुसार अगो की उ

३६ दुवात्तसमेगिनिबद्धे—दिट्ठीवाप, पृ० १३६

३७ पदमङ्गलम, भाग १, पृ० २६०

३८ वही, भाग १३, पृ० २३६

पूरी से मानी गई है। अर्थों के अनिश्चित अंगबाह्य ग्रन्थ हैं जिनकी रचना अगो के आधार से हुई है। उनकी मकदा चौदह है—गाथायिक, अनुविद्यार्थितव, कथना, प्रति-
फलन, वैयक्तिक, दृष्टिकर्म, दशवैयक्तिक उत्तराध्ययन, वस्य व्यवहार, वस्यवस्य,
महाकृत्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक तथा निषिद्धिवा। दिग्दर्शक परम्परा इन अंगबाह्य
ग्रन्थों को भी मुख्य हुआ मानती है परन्तु दशवैयक्तिक परम्परा में उनमें से अधिकांश
ग्रन्थों को गुरजित माना गया है।

उपनिषद् ग्रन्थ अर्थों के बाहर उपांग माने जाते हैं—उपनिषद्, रायप्रेमिय,
जीवामियम, पञ्चमया, गुरियपञ्चमि, जम्बूदीव पञ्चमि, अदपञ्चमि, निरपञ्चमि,
वस्यवस्यमि, पुष्पिमा, पुष्पपुष्पा और बन्धुमात्रो। ऐतिहासिक दृष्टि से देना
जाय तो उपांगों के क्रम का अर्थों के क्रम से कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। समय १२वीं
शती से पूर्व के ग्रन्थों में उपांगों का वर्णन भी नहीं आता। ये उपांग सांस्कृतिक दृष्टि
से विशेष महत्त्व के हैं। आठवें उपांग से लेकर बारहवें उपांग तक को समग्र रूप से
निरपञ्चमिमात्रो भी कहा गया है।

उपांगों के बाद बार मूलग्रन्थ, छ. छेदग्रन्थ और दस प्रकीर्णक ग्रन्थ भी मिलते
हैं। उत्तराध्ययन, आचारगय, दशवैयक्तिक और निषिद्धिग्रन्थि या ओपनिषद्ग्रन्थि में
बार मूलग्रन्थ हैं। इनका भी उत्प्रेम प्राचीन आधर्मों से नहीं मिलता। छेदग्रन्थों में
आचार-विचार का वर्णन है। उनकी संख्या छ है—दशगुणकण्ठ, वृहत्स्वर, व्यवहार,
निमीह, महानिमीह और जीतकण्ठ। प्रकीर्णक ग्रन्थ आचार्यों द्वारा रचित हैं। वनमी
वाचना के समय निम्नलिखित दस ग्रन्थों की ह्री प्रकीर्णकों में समाविष्ट किया गया—
चतुर्दश, आठवैयक्तिक, महापञ्चमया, सप्तपञ्चमा, सप्तवैयक्तिक, सप्तारक,
मष्टाचार, गतिविज्ञा, वैश्वदेव, और मरणसमाधि। बन्दी और अनुयोगद्वार की
गणना जुनिवा सूत्रों में की गई। ये जुनिवाग्रन्थ ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप में माने
गये हैं।

विस्तार के ताल से इन ग्रन्थों की समीक्षा नहीं की जा सकती। पर इतना
अवश्य कहा जा सकता है कि इन ग्रन्थों में अब ग्रन्थों की भी अपेक्षा उत्तरकालीन पट-
नाओं का कहीं अधिक समावेश है। उनमें जितने ग्रन्थों को और उनके रचितने अर्थों
की महावीरवासीन माना जाय, वह बहू सचना सरल नहीं। साधारणतः अब ग्रन्थों
को महावीरवासीन कहा जा सकता है।

महावीरवासीन साहित्य की दृष्टि से उपनिषद् और पाणिनि त्रिपिटक साहित्य
को भी उद्घुष्ट किया जा सकता है पर हमने यहाँ मात्र जैन साहित्य को इस काल-
सीमा के अन्तर्गत रखा है। उपनिषद् और त्रिपिटक—दोनों जैन साहित्य से प्रभावित
दिखाई देती हैं। उनमें परस्पर आदान-प्रदान सीमा और विषय आदि की दृष्टि से हुआ
है। विषय की दृष्टि से उपनिषद् महावीर के सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित लगते हैं।
अथवा विचारधारा ने वैदिक साहित्य में उपनिषद् साहित्य को जन्म दिया, यदि यह

कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। त्रिपिटक और आगम में तो माया, विषय जो सौली, तीनों की दृष्टि में काफी समानता दिखाई देनी है।^{४६}

महावीरकालीन साहित्य आध्यात्मिक ही नहीं बल्कि कला के क्षेत्र में भी उसका महत्वपूर्ण योगदान है। समवायों^{४७} में अठारह लिपियों का उल्लेख है— १—बंभी (ब्राह्मी) २—जवणी लिपी (यावनी), ३—दोगाउवरिआ (दोपोरवरिका), ४—परोट्टिआ (परोट्टी), ५—गरमाविआ (गरमाविका), ६—पहाराइआ (पहाराइआ), ७—उच्चतरिआ (उच्चनरिका), ८—अकगरपुट्टिया (अक्षरपुट्टिका), ९—मोगवज्जा (मोगवतिका), १०—वेणतिया (वेणविका), ११—णिण्हदमा (निहविका), १२—अकलिपी (अकलिपि), १३—गणिअलिपी (गणितलिपि), १४—गधअलिपी (गधवलिपि) १५—आदंसलिपी (आदंसलिपि), १६—माहेगरीलिपी (माहेस्वरीलिपि), १७—दामिनिपी (दाविदलिपि) और १८—बोन्दिदलिपी (बोन्दिदलिपि)। यहाँ ऐसा लगता है कि ये सभी स्वतन्त्र लिपियाँ नहीं बल्कि ब्राह्मी के ही संगन प्रकार हैं (बम्बीएण विरोए अट्टासविहे तेराविहाणे)।

जैन साहित्य में ब्राह्मी को ही प्रमुख स्थान दिया गया है। कहा जाता है, आदि तीर्थंकर ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को यह लिपि सिनायी थी। उसी के नाम पर इस लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ गया। वृत्तिकार के समय तक ये लिपियाँ महद्व हो चुकी होगी। उन्होंने अपने विभिन्न रूप धारण कर लिए होंगे। यही कारण है कि ऋषभदेव को यह लिपिना पड़ा—एतन्स्वरूप न हृष्ट, इति न दर्शितम्।

आगे ब्राह्मी लिपि के ४६ मालुकाधरो (मूलाधरो) का उल्लेख हुआ है। इन अक्षरों में ऋ, ॠ, ए, ओ, और छ ये पाँच अक्षर सम्मिलित नहीं हैं। ४६ अक्षर इस प्रकार हो सकते हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ; ये १२ स्वर, क से लेकर म तक के २५ स्पर्शधर, य, र, ल, और व ये ४ अन्तस्थ, ञ, ण, ग और ह ये ४ उत्माधर तथा १ क्ष—१२+२५+४+४+१=४६।

समवायों में भी ७२ कलाओं का उल्लेख मिलता है—लेख, गणित, रूप, नाट्य, गीत, शास्त्र, स्वरविज्ञान, पुस्तकविज्ञान, ताम्रविज्ञान, छूत, चार्ताविज्ञान, गुणशास्त्र, पायाचोडा, कुम्भकला, अन्नविधि, पानविधि, वस्त्रविधि, वादनविधि, स्मृदरचना, पहेनिवा, मातृपिवा, गाथा रचना, वनोक रचना, वधपुत्रिण, वधुगिरिण, आभरणविधि लहणी प्रतिकर्ष, स्त्री मरण, पुत्रमरण, हयमरण, वज्रमरण, मोनडाण, बुबुद मरण, मेडाणडाण, अकण्डाण, अन्नमरण, दण्डनडाण, अमिमराण, मणिसडाण, काटिणीनडाण, अर्मयडाण, अग्निनडाण, मूर्धवरित, राहुवरित, वधवरित, सोमाग्-

३६ विनायक से देगिए लेखक का ग्रन्थ Jainism in Buddhist Literature प्रथम अक्षर।

४७ मक्कायां, मूल १८.

कर, दोर्माग्यकर, विद्याविज्ञान, मन्त्रविज्ञान, रहस्यविज्ञान, वस्तुविज्ञान, सैन्य विज्ञान, युद्धविद्या, व्यूह रचना, प्रतिव्यूह रचना, स्वभावाचार विज्ञान, मन्त्र निर्माणकला, वस्तु-प्रमाण, स्वभावाचार-निर्माणकला, वास्तुविधि, मन्त्र निवास, ईश्वरदर्श, अतिशक्ता, अरव-शिक्षा, हस्ती शिक्षा, धनुर्वेद, हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मणिपाक, धातुपाक, बाहुपुड, दण्डपुड, मुष्टिपुड, दंष्ट्रिपुड, बुद्ध-निपुड, मुद्यातिपुड, मूत्रवेष्ट, नानिवावेष्ट, वरंवेष्ट, चर्मवेष्ट, चर्मवेष्ट, वस्त्रवेष्टन कला, कंटक वेष्टन कला, सत्रीविनी विद्या और शाकुनरूप ।^{४१}

इन कलाओं के मध्य में जागमों के छुटपुट उल्लेख पृथक् रूप में भी मिलने हैं । नायाधम्मकहाओ में धनुर्वेद और सहीन का उल्लेख मिलता है ।^{४२} यहाँ तभीत चार प्रकार का है—वाद्य, नाट्य, वेद्य और अभिनेय । इसमें बीणा, तान, तालमय और वादित्र को प्रमुख स्थान दिया गया है । स्वर गान प्रकार के हैं—पडम, भ्रम, गायार, मध्यम, पचम, धंवन, और निपाद । इन स्वरों के अष्टमिह्ता, उर, कंटोदगमन, मन्त्रमिह्ता, मामा, वनोष्ठ, और मूर्धा ये क्रमशः सात स्वर स्थान हैं । मृदग, गोमृही, शल, मल्लरी, गोधिवा, आहम्बर और महाभेरी इन वाद्यों में ये स्वर निरुत होते हैं । इन स्वरों के गुण-दोष आदि पर भी यहाँ विचार दिया गया है ।

स्थानांग में अनेक वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है जैसे—तल, विलत, धन और मृमिर ।^{४३} इसी प्रकार चार प्रकार के नृत्य, सहीन, वास्त्य, अमकार और अभि-नय का भी उल्लेख है ।^{४४}

चित्रकला के मध्य में नायाधम्मकहाओ के प्रथम महत्त्वपूर्ण हैं इसमें एक चित्र-कार ऐसा था जो द्विपद, त्र्युपद और अपद (बृहदि) के एक भाग को देखकर दोष भाग को चित्रित कर दिया करता था । ये चित्रकार राजा की चित्रमत्ता को तज्जया करते थे जो वाष्कर्म, पौत्पकर्म आदि से तज्जई जाती थी ।^{४५} राजगृह आदि नगरों में इन प्रकार की सुन्दर चित्रमत्ताएँ थी ।

मूर्तिकला और स्थापत्यकला की दृष्टि से भी वैनाय साहित्य उल्लेखनीय है । नायाधम्मकहाओ में एक सुवर्णमयी प्रतिमा का उल्लेख है जिसे मणिपीडिका पर स्थापित किया गया था और जो यौवन और लावण्य में विलकुल मल्लिकुमारी जैसी लगती थी ।^{४६}

४१ वही, सूत्र ७२ जम्बूदीपप्रशमि, पृष्ठ ३, सूत्र ३०

४२ नायाधम्मकहाओ ८, पृ० १०६

४३ स्थानांग ४, पृ० २७१

४४ वही ४, पृ० ३७४

४५ वही, १३, पृ० १४२

४६ वही, ८, पृ० १५

इसी प्रकार व्यापकता भी उन समय समुदा थी । एक प्रकार की श्रम रचना के वर्गों में इसे देना जा सकता है । ४० वर्गों, वर्गों और मातापिता के भी सुन्दर वर्गों में है । विचार महावीर व्यापकता और अभिव्यक्ति के लिए जा सकते हैं ।

यही हमें व्यापक के बोझ से ही वर्गों को प्राप्त किया है । यदि उन, रीत, धर्म और प्रतीक वर्गों को भी यही व्यापकता कर दें तो एक बड़ा सुन्दर सामग्री एकत्र हो सकती है । ४०

☆

४७ वही १, पृ० २२

४८ विशेष देखिये, जैन आद्यम साहित्य में भारतीय समाज—डा० जगदीशचन्द्र जैन, पाँचवाँ अध्याय ।

प्रमुख उपासक और उपासिकायें

१. राजन्य वर्ग

- १ सम्राट धर्मिक अपथा विन्धितार
- २ अमृतनाथ कृष्णिक
- ३ राजा चेटक
- ४ राजा उदयन
- ५ राजा उदयन अपथा उदावेन
- ६ राजकुमार श्रीवन्दर
- ७ राजकुमार वारिदेश
- ८ राजकुमार मेघ
- ९ राजकुमार अमय
- १० चण्डप्रद्योत
- ११ वनार्णभद्र
- १२ इषिकाह्व
- १३ नागलि

२. उपासक वर्ग

- १ आनन्द
- २ सिंह सेनापति
- ३ गृहपति उपासि
- ४ अमय राजकुमार
- ५ अतिवन्द्यपुत्र ग्रामजी
- ६ वन्द्य थावक
- ७ भूतार धेठ्ठी
- ८ सचक निगण्डपुत्र
- ९ आर्य कालाम

३. उपासिका वर्ग

- १ चन्दना
- २ मृगावती
- ३ कमभावती
- ४ धर्मिक परिवार

बढ़ा जाता है कि चण्डप्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता को मन्थर्व विद्या सिखाने के लिए उदयन को केंद्र किया। बाद में उदयन और वासवदत्ता का प्रणय सम्बन्ध भी हुआ। चण्डप्रद्योत तथा उदयन के बीच झुड़ होने का भी उल्लेख साहित्य में मिलता है।

उदयन और वासवदत्ता की प्रणय गाथा ने साहित्य सर्जकों को बड़ी प्रेरणा दी। कनकपुर मास का योगनारायण, हर्ष की रत्नावली और त्रिपटनिका तथा धूर्तर का वल्लभरित्त अधिक मोहप्रिय हुआ है। इनके अनिरिक्त बीजावासवदत्ता, तापस वामराज आदि कृतियाँ भी साहित्यिक क्षेत्र में फनीभूत हुई हैं।

राजा उदायन अथवा उद्दयन

उदायन सिन्धु-सौवीर का महाराजा था। उसकी राजधानी भीतिमय एक सुन्दर नगरी थी। राजा उदायन महावीर का कट्टर अनुयायी था। भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर उसने राज्य त्यागने का निश्चय किया। उसने सोचा—जो राज्य स्वयं को अनर्थकारी है उसे अपने पुत्र अमीचक्रुमार को केंद्र दिया जाय ? यह विचार कर उसने अपना राज्य अपने भानजे केन्द्रिगुमार को सौंपकर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली। बाद में केन्द्रिगुमार ने निध्याधारणा से मुनि अवस्था में ही उसका बंध करा दिया।

राजकुमार जीवन्धर

वशिष्ठापमवर्ती हेमावद नामक देश के महाराजा सत्यन्धर के सुपुत्र कुमार जीवन्धर ने भी भगवान महावीर के उपदेशों का अनुकरण कर आत्मवैश्याण किया। वे एक वीर घोड़ा और कुशल प्रसासक थे। काष्ठीयार जैसे दृढ़तन अमात्य को उन्होंने जो पाठ दिया वह अनुकरणीय है। एक दिन उन्होंने शहरों के दो मुण्डों को परस्पर लड़ते हुए देखा। उनके इस पाण्डाली क्रूर को देखकर जीवन्धर को यह अनुभव हुआ कि जीव कितना स्वार्थी है। अपने स्वार्थ के कारण वह कितना घनित हो सकता है ? इन विचारों में वे इतनी गहराई तक पहुँचे कि उनके चिन्तन में पीतरागता उमड़ आई। सीमाव्यवस्था महावीर भी वही समझ आ पहुँचे। जीवन्धर ने इस स्वर्ण अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया और उन्होंने भगवान से व्यामर्षी दीक्षा ग्रहण कर ली। कालांतर में उन्होंने विपुलाचन पर्वत से ही निर्वाण प्राप्त किया।

राजकुमार वारिपेण

वारिपेण चेलना से उत्पन्न शैलिक का पुत्र था। प्रारम्भ से ही वह घासिक प्रवृत्ति का था। व्रत-उपवास करने में उसका मन अधिक लगता था। एक बार उसने चतुर्दशी का प्रोपधोषवाह किया और रात्रि में घर्म ध्यान के लिए दमस्तान में बैठकर आत्मचिन्तन करने लगा।

राजगृह में ही एक विद्युत नामक खोर रहता था। वह किसी वेश्या में अनुरक्त

शैविक जीवन के अन्त लक्ष भगवान महावीर का अनुयायी बना रहा। अपने गौतमिक स्थानों के निर्माण में भी गौरवान् योगदान दिया। उनके पुत्र अजातशत्रु कूणिक ने उसे जीवन के अन्तिम समय में काशगार में बन्द कर दिया था और वही उनकी मृत्यु भी हुई थी। राजा शैविक के विषय में कहा गया है कि वह भविष्य में जैन तीर्थंकर होगा। अपने जीवनकाल में शैविक ने प्रश्रय देने वाली को सहयोग भी दिया।^१

अजातशत्रु कूणिक

अजातशत्रु कूणिक जैन-बौद्ध साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। वह चेतना का पुत्र था। चेतना के ही प्रभाव से वह भगवान महावीर का भक्त हुआ। महावीर के वस्त्र पहनने पर उसने उनका हृदय से स्थापित किया। प्रकृति से वह क्रोधी था। अपने पिता बिम्बिसार को उसने दारुण दुःख दिया था। बिम्बिसार ने अपने पुत्र हस्त-विह्वल को जो हाथी और हार दिये थे उनके कारण उसका युद्ध राजा चेटक से हुआ। युद्ध में चेटक के तीव्र बाणों से कूणिक के नौ भाई और अपार सेना नष्ट हो गई। तब कूणिक ने महाशिलाकटक और रघुमत्स्य नामक प्रबन्ध अस्त्रों से वैशाली को घरा-घामी कर दिया। उसने राज्य लोभ के कारण अनेक युद्ध किये। अपने पिता बिम्बिसार को कारावास और बधदण्ड जैसे कुहरण भी उसके शिर पर बंधे हैं। महावीर की वाणी से प्रभावित होकर उसने इन्द्रभूति यौतम के पास धावक व्रत ग्रहण किये।^२

राजा चेटक

चेटक वैशाली के अधिपति थे। उनकी सात पुत्रियाँ थीं—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा और चेतना। उनमें से सुज्येष्ठा ने तो कीमार्वावस्था में ही महावीर से दीक्षा ले ली थी। छेप पुत्रियों का विवाह सम्बन्ध क्रमशः उस समय के प्रख्यात राजा उदयन, दधिवाहन, शतानीक, भण्डप्रद्योत, मन्दिवर्धन और शैविक बिम्बिसार के साथ हुआ था। महावीर स्वामी की माता त्रिशला दिगम्बर परम्परा-नुसार चेटक की पुत्री और ह्वेताम्बर परम्परानुसार चेटक की बहिन थी। इसलिये राजा चेटक का भगवान महावीर की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। आवश्यक पूर्ण में उसे जनघारी धावकी में गिरा गया है। चेतना से उत्पन्न कूणिक से उनका घनघोर युद्ध हुआ था जिसका हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं।

राजा उदयन

कौशाम्बी का राजा उदयन उश्रवण से विप्र व्यक्तित्व था। उदयन सह्यानीक का पौत्र और शतानीक का पुत्र था। उसकी माता चेटक की पुत्री मृगावती देवी थी। वह भी भगवान महावीर का परम भक्त था। उदयन गन्धर्व विद्या में निष्णात था।

१ आवश्यक भूति; उत्तर० पृ० १६६

२ उवातगदमाओ, पृ० २५

बहा जाता है कि ऋष्यशृङ्ग ने अपनी पुत्री सातवदत्ता को मन्थर्व विद्या सिखाने के लिए उदयन को बँद दिया। बाद में उदयन और सातवदत्ता का प्रणय सम्बन्ध भी हुआ। ऋष्यशृङ्ग तथा उदयन के बीच युद्ध होने का भी उल्लेख साहित्य में मिलता है।

उदयन और सातवदत्ता की प्रणय गाथा ने साहित्य मन्थर्वी की बड़ी प्रेरणा दी। कनकम्बु नाम का योगन्धरावध, हर्ष की रत्नावली और त्रिपदसिका तथा गूढक का चरमचरित्त अधिक मोचयित्व हुआ है। इनके अनिश्चित बीणावधवदत्ता, तापस वनराज आदि इन्हीं की साहित्यिक सोच में पड़ीयून हुई हैं।

राजा उदायन अथवा उदायन

उदायन सिन्धु-सीन्धी का महाराजा था। उसकी राजधानी बीतिमय एक गुप्तर नगरी थी। राजा उदायन महावीर का बट्टर अनुयायी था। भगवान के उद्देश से प्रभावित होकर उसने राज्य त्यागने का निश्चय किया। उसने सोचा—जो राज्य स्वयं को अनर्थकारी है उसे अपने पुत्र अभीषेकुमार को बँदे दिया जाय ? यह विचार कर उसने अपना राज्य अपने मानने केसिपुमार को सौंपकर निर्बन्ध दीक्षा धारण कर ली। बाद में केसिपुमार ने मिथ्याधारणा से मुनि अवस्था में ही उसका बध करा दिया।

राजकुमार जीवन्धर

दक्षिणापथवर्ती हैमानद नामक देश के महाराजा सत्यन्धर के सुपुत्र कुमार जीवन्धर ने भी भगवान महावीर के उद्देशों का अनुसरण कर आत्मवत्याग किया। वे एक वीर योद्धा और तुलाम प्रज्ञातक थे। बाण्डाधार जैसे कुलज्म अमात्य को उन्होंने जो पाठ दिया वह अनुकरणीय है। एक दिन उन्होंने बन्दरों के दो मुण्डों को परस्पर मड़ते हुए देखा। उनके इस व्याख्यामी कृत्य को देखकर जीवन्धर को यह अनुभव हुआ कि जीव जिनका स्वामी है। अपने स्वामी के कारण वह कितना पणित हो गया है ? इन विचारों से वे दमनी महाराई तक पहुँचे कि उनके विस्तार में जीनरागता उमड़ आई। सौभाग्यवश महावीर भी वहाँ समय आ पहुँचे। जीवन्धर ने इस स्वर्ण अवसर को हाथ से नहीं जाने दिया और उन्होंने भगवान में व्यामपी दीक्षा ग्रहण कर ली। कालान्तर में उन्होंने त्रिपुलाचन पर्वत से ही निर्वाण प्राप्त किया।

राजकुमार वारियेण

वारियेण बेसन से उत्पन्न शैलिक का पुत्र था। प्रारम्भ से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति का था। वन-उपवास करने में उसका मन अधिक लगता था। एक बार उसने चतुर्दशी का प्रोचयोरवास किया और रात्रि में धर्म ध्यान के लिए समझान में बैठकर आत्मविस्तार करने लगा।

रात्रग्रह में ही एक विद्युत नामक चोर रहता था। वह किसी वेद्या में अनुरक्त

उसे अपना प्रधानमन्त्री बनाया था। अपनी नीति-बुद्धलता से उसने एकाधिक बार श्रेणिक के प्रकोप से अपने समूचे परिवार को बचाया। भगवान महावीर का यह परम भक्त था।

मज्झिम निकाय में एक अमय राजकुमार मुक्त है जिसमें उसे मूलतः निगण्टनात-पुत्र का अनुयायी बनाया गया है। जैन साहित्य में उसके अनेक धार्मिक प्रसंगों का उल्लेख है। षण्डप्रद्योत के प्रचण्ड आक्रमण को उसने बड़े वीर्य से बचा लिया था।

अपने पूर्वज महावीर स्वाधी से जानकर अमय ने धर्म धारण किया और बीड़ा लेकर निर्वाण प्राप्त किया।

षण्डप्रद्योत

षण्डप्रद्योत उज्जैनी का राजा था। स्वभाव में वह अत्यन्त क्रोधी था। गोपालक और पालक उसके दो पुत्र थे। षण्डप्रद्योत आजीवन राजाओं से संपर्क करता रहा। उसने राजगृह पर भी आक्रमण किया। पर राजकुमार अमय ने बड़ी ही कुशलतापूर्वक उसे लौटा दिया। षण्डप्रद्योत को जब यह बात समझ में आयी तो उसने छत्र से अमय राजकुमार को बन्दी बना लिया। अमय की दूरदर्शिता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर षण्डप्रद्योत ने उसे मुक्त कर दिया। उधर मुक्त होकर अमय ने भी छत्र से एक बार षण्डप्रद्योत को पकड़ा और राजगृह से आया। श्रेणिक जैसे ही उसे मारने दौड़े, अमय ने उसे अमयदान दिया।

षण्डप्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता की गम्भीर शिक्षा मिलाने के लिए कौशाम्बी के राजा उदयन को पकड़ा। बाद में उदयन और वासवदत्ता परिणय में बंध गये। उदयन ने भी प्रद्योत की बन्दी बनाया और उसे छोड़ दिया।

षण्डप्रद्योत के इन संपर्कशील स्वभाव के बावजूद वह महावीर भगवान का बड़ा भक्त था। उदयन के कारण उसकी अट्टा जाग्रत हुई थी और अन्त समय तक बनी रही थी।

दशार्णभद्र

दशार्णभद्र दशार्णपुर का राजा था। दशार्णपुर की पहचान आश्वला माधारणत विदिशा (भेलता, म० प्र०) से की जाती है। उसी के निकट दशार्णकूट पर भगवान महावीर का समवधारण पहुँचा था। दशार्णपुर के वेसनगर, रघ्वावर्न आदि नाम भी साहित्य में मिलते हैं। अशोक ने वहाँ राज्य किया है। समीपस्थ उदयगिरि की मुफाएँ जैन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। वहाँ का राजा दशार्णभद्र भगवान महावीर का भक्त अनुयायी था।

दधिवाहन

दधिवाहन क्षत्रिय का राजा था। उसकी पत्नी पद्मावती महाराजा चेटन की पुत्री थी। दधिवाहन भी महावीर का अनुयायी था। उनकी प्रथम साध्वी पत्न्या

का उपाग एकात्मिक रूप में नहीं दिया जा सकता। अन्त में कहा गया है कि इस बुद्ध का यात्रक हो गया।^९ अन्त्य एक स्थान पर निर्गन्तव्यपुत्र की गर्वज्ज्ञा के लिए मैं भी बुद्ध और अमर के बीच बाग हुई थी।^{१०}

अभिराम्यकपुत्र धामणी

नालन्दा में एक बार बुद्ध ने अभिराम्यकपुत्र धामणी ने पूछा—निगठानपुत्र अपने पिछो को क्या उपदेश देते हैं ? धामणी ने कहा—‘प्रागान्निपातादि नहीं कना चाहिए, यही उनका प्रमुख उपदेश है। जो हितादिक पापों को जिनना अधिक करता है उसकी घेमी हो गति होती है।’ तब बुद्ध ने कहा कि ‘क्यति जीवन में हिमा कति करता है इनलिए उसकी दुर्गति ही अधिक होती। तुम भी दुर्गति पाओगे। अन्त में धामणी बुद्ध का अनुयायी हो जाता है।^{११} अन्त्य एक स्थान पर कहा गया है कि निगठानपुत्र ने बुद्ध से बाद-विवाद करने के लिए धामणी को भेजा। धामणी ने बुद्ध से उत्तर पाकर उनका अनुयायी हो जाना स्वीकार कर लिया।^{१२}

वप्य धावक

कपिलवस्तु का निवासी वप्य निगठानपुत्र का अनुयायी था। बुद्ध के वहाँ पहुँचने पर वह उनके दर्शन करने गया। बुद्ध के शिष्य मोद्गल्यायन ने वप्य से पूछा—क्या एक व्यक्ति जो मन-वचन-काय से सम्यक् हो, अविद्या से विरक्त हो और विद्याप्राप्ति हो, उसे पूर्वजन्म के दुःख आसक्तों की प्राप्ति हो सकती है ? वप्य ने कहा—‘हो सकती है। इसी बीच बुद्ध वहाँ आ गये और फिर बुद्ध एवं वप्य में संसार होने लगा।^{१३} मैंने कहा गया है कि वप्य बुद्ध का अनुयायी भी हो गया।^{१४}

मृगार धेष्ठी

आवस्ती का मृगार धेष्ठी निगठानपुत्र का अनुयायी था। उसने अपने पुत्र पूर्वकर्मण का परिलय सम्बन्ध साकेत के घनञ्जय नाम धेष्ठी की पुत्री विशामा से किया। विशामा बुद्ध की उपासिका थी। एक बार मृगार के घर में जैन निर्ग्रन्थ आये। विशामा ने उन्हें देखकर विमृष्टा भाव व्यक्त किया। मृगार को उसका यह हाल असह्य हो गया। उसने भी बौद्ध भिक्षुओं का आदर-भस्मान नहीं किया। अन्त में कहा गया है कि विशामा के प्रयत्न से मृगार भी बुद्ध का अनुयायी हो गया।^{१५}

- ९ वही, अमराराजकुमार मुक्त
- ७ अमुत्तरनिवाय, त्रिकनिपात
- ८ समुत्तनिवाय, सममुत्त
- ९ वही, बुद्धमुत्त
- १० अमुत्तरनिवाय, चतुस्रनिपात
- ११ वामपद, अट्टकपा

सम्बन्धक निगण्टगुप्त

सम्बन्धक निगण्टगुप्त निगण्टनान्तगुप्त का अनुयायी था। वह विद्वान्, प्रतापी, परिहर्तमानो और बहुजन-मम्यान्तित था। उसने बुद्ध से भी वादविवाद किया।^{१२} बाल्यान्तर में बुद्धधर्म ने अद्वैतवा में एक कथा बढ़कर सम्बन्धक को निगण्ट-निगण्टी का पुत्र बना दिया।^{१३}

आराध कात्तम

आराध कात्तम बंगाली में अपने तीन भी शिष्यों के साथ रहते थे। बुद्ध ने भी बोधि-शालि के पूर्व उनसे ज्ञान-शालि के निमित्त उनका शिष्यत्व स्वीकार किया था।^{१४} यहाँ आराध कात्तम को जिनश्रावक कहा गया है। सम्भव है, वह पहले पार्श्वनाथ परम्परा का और बाद में महावीर का अनुयायी रहा हो। संरक्षरर्चन से भी उसका सम्बन्ध होना जाता है।

इनके अनिश्चित शालिग्रह, मिहग्रह, उदयगिरि, अर्जुनमाली, तारानगुप्त, दिक्कम मिह, गुह्यक आदि अनेक राजे-महाराजे, वनपति वनजान महावीर के भवन रहे जिन्होंने उनके धर्म का सूत्र प्रचार-प्रसार किया। हस्तिगिरि (मुक्त का पश्चिमोत्तर प्रदेश) के राजा महीनगुप्त के पुत्र मुवाहु, लोमपिका नगरी के राजा अग्रहिह, वनिय नरेश वीरध्वंशी और धनध्वंशी, पुण्ड्रवर्ष (बंगाल) के राजा निहुरथ, मुक्तदेश (वर्तमान भारत) के राजा विजयराज, मल्ल देश (विराटनगरी, जयपुर के समीप) के राजा मन्दिवर्ष, पांचाल (बागमर) के राजा सत्य, दशार्ण (पालक प्रदेश) के राजा दशार्ण मद्र, मुक्त (वागमणि) देश का जन-जन, अमर-मोहनपुर (पटना-प्रतिष्ठान बंगाल-उड़ीसा का भाग) के राजा प्रमप्रचन्द्र, वेङ्गवर्षजनपद के राजा प्रदेशी, मुक्तदेश हस्तिनापुर के राजा शिवराजपि, गुरिमनास (प्रयाग) के राजा महाबल, वर्धमानपुर (बंगाल) के राजा विनयमित्र, कावन्दी नगरी (बोरगपुर) के राजा धर्म और मुनयान आदि महानुभावों ने भी भगवान् महावीर के भगवत्परा में आकर जैनधर्म ग्रहण किया। कहा जाता है कि बम्बोज (नाम्धार का पार्श्ववर्णी प्रदेश), बाम्हीक (अफगानिस्तान के उत्तर में), और वन (यूनान) देशों में भी भगवान् महावीर ने अपना धर्म-प्रचार किया।^{१५}

उपासिका वर्ग

जैनधर्म राजन्य वर्ग तक ही सीमित नहीं था बल्कि वह महिला वर्ग में भी लोकप्रिय हो गया था। नारी लोक के जागरित करने में महावीर ने बहुत ही और तत्त्वा-

१२ मण्डिम निवाय, महाभक्तवर्णनान्त

१३ मण्डिम निवाय, अद्वैतवा, १, ४२०

१४ महावस्तु

१५ तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, भाग १, पृ० २८०-१

तीन प्रचलित दासता से मुक्त किया। सामाजिक क्षेत्र में यह एक नयी प्रान्ति थी। चन्दना आदि इस प्रान्ति की प्रमुख उपनिर्माएँ थीं।

चन्दना

चन्दना जम्हा नगरी के राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की पुत्री के उसका नाम मूलतः चमुमती था। कौशाम्बी के राजा सत्तानीक और दधिवाहन के बीच किसी कारणवश वैमनस्य हो गया। अन्ततः पाकर सत्तानीक ने चम्मा पर आक्रमण कर दिया और योद्धाओं की नगरी छूटने की छूट दे दी। दधिवाहन के मन्त्रियों ने दधिवाहन को तो गुप्त मार्गों से जगत में भेज दिया पर महारानी धारिणी और चमुमती अग्न्यन नहीं जा सकी। संयोगवशात् सत्तानीक के किसी सैनिक ने उन्हें पकड़ लिए और कौशाम्बी की ओर उन्हें लेकर निकल गया। धारिणी ने उसके द्रुपित रिक्त जानकर मार्ग में ही अपने वीर्य रक्षण के लिए श्वाशुरसमर्पण कर दिये। सैनिक किसी प्रकार से चमुमती को ही घर तक ला सका।

कौशाम्बी पहुँच कर सैनिक ने विक्रयार्थ चमुमती को बाजार में बिक्री कर दिया। थोड़ी घनावह ने उसे खरीदा और अभिजातकुलीन चम्मा समझकर उसे अपनी पत्नी मूला को सौंप दिया। पति-पत्नी ने उसका पुत्रीवत् पालन-पोषण किया।

चमुमती बड़ी मेधावी और प्रतिभासम्पन्न राजकुमारी थी। उसका स्वभाव चन्दन के समान शीतल और आनन्दकारी था। इसलिए थोड़ी परिवार ने उसका नाम चन्दना रख दिया।

चन्दना अपनी बाल्यावस्था को पारकर तरुणावस्था पर आयी। उसका सौन्दर्य और भी अधिक निराल था। उसे देगकर मूला को यह भाव आने लगा कि कदाचित् उसका पति घनावह चन्दना के सौन्दर्य से आश्चर्यित होकर उससे विवाह सम्बन्ध न कर ले। इसलिए वह चन्दना को सदैव के लिए अपने मार्ग से हटा देना चाहती थी।

एक दिन घनावह के वैर भुलाते समय चन्दना के बाल भीचे बिना रहें। घनावह ने मन्त्रिण वाग्व्य से उन्हें उसके बूढ़े से भैया दिया। मूला ने इसे देग दिया और उसकी माया और भी बढी हो गई।

एक बार घनावह वहीं बाहर गये थे। अन्ततः का नाम उठाकर मूला ने चन्दना को बूझ पीटा और भारी बाध बटका दिये। बाद में हाथ धीरे में हथकड़ी-सी बांधकर उसे मकड़े में बांध दिया। तीन दिन तक वह भूखी-प्यासी बनी पड़ी रही और जाने कबो वर मिलान करती रही।

भीखे वर घनावह ने जब चन्दना को बरी देगा तो उसके विषय में दोषों में पूछे। किसी तरह एक दिन ने लगी चन्दना कहा दी। मकड़े का दरवाजा मोचने को जब वह पहुँचा तो चन्दना का अत्यन्त-मुन्य देगकर उसके जीव आ गये। घनावह की

ओर गया तो उसे सूप में मात्र उबड़ के बावने मिले। उन्हें चन्दना को देकर वह सोहार के पास दोरा।

इसी बीच भगवान महावीर अपने कठोर अभिग्रहपूर्वक आहार को निकले। उनको अपनी ओर आते हुए देखकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। वह किसी प्रकार सूप लेकर देहनी से बाहर निकली और तपस्वी महावीर से मिठा-ग्रहण करने की अभ्यर्थना की। उसके पास सूप में मात्र उबड़ के बाकले थे। उसके मन में यह बात उठी कि इतना तुच्छ आहार इतने बड़े व्यक्तित्व को कैसे समर्पित किया जाये। यही सोचकर उसकी आँखें भर आयीं। साथ ही महावीर जैसे महान पात्र को देखकर वह हर्ष से विह्वल हो उठी। आधुनिक विज्ञान ने ऐसा भी सिखा है कि महावीर ने अपने अभिग्रह की पूर्ति में कुछ कभी देही। वे मिठा ग्रहण विये बिना ही बाहर निकलने लगे। यह देख चन्दना की आँखों में आँसू आ गये। जब साथक महावीर का अभिग्रह पूरा हो चुका था। उन्होंने उसकी मिठा को स्वीकार कर लिया।

चन्दना के इस आच्योरय पर सभी व्याचक्र उसे श्रद्धा से देखने लगे। महाराजा शतानीक भी सपरिवार उसकी अभिबन्दना करने आये। शतानीक के साथ अधिवाहन का अगारशक भी बन्दी के रूप में आया था। चन्दना को देखकर वह उसके पैरों पर गिर पड़ा। पृच्छने पर उसने चन्दना का सामूचा परिचय दिया। शतानीक की पत्नी मृगावती चन्दना की माता पद्मावती की बहिन थी। सभी मिलकर बड़े गर्वद हुए।

चन्दना को इस घटना के कारण संसार से वैराग्य हो गया। वह आध्यात्मिक साधना में छुट गई। संसार के स्वरूप पर चिन्तन करते हुए उसने आत्मसंयम कर लिया। महावीर की केषसज्जन प्राप्त होने के बाद यही चन्दना उनकी अग्रणी साध्वी आचार्या हुई। महावीर स्वामी ने श्रमणी सप का सचालन भी चन्दना के ही हाथ सौंपा। चन्दना का दामत्व महावीर के कारण ही छुट सका।

मृगावती

कौशाम्बी के राजा शतानीक की पत्नी महारानी मृगावती महावीर स्वामी की परम भक्त थी। उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत ने उसे हथियाने के लिए कौशाम्बी पर आक्रमण किया। उज्जयिनी के सामने कौशाम्बी सैनिक दृष्टि से प्रबल नहीं थी। इस आक्रमण काल में शतानीक की मृत्यु हो गई। महारानी ने कौशाम्बी की सथासक्ति रक्षा की। वह भगवान महावीर की परम भक्त थी। इसी आक्रमण के बीच महावीर स्वामी का समवसरण कौशाम्बी पहुँचा। चण्डप्रद्योत भी वहाँ दर्शनार्थ गया। महावीर का उपदेश सुनकर मृगावती अपने राजकुमार पुत्र उदयन की मुरखा का मार चण्डप्रद्योत को सौंपकर साध्वी हो गई। साथ ही शतानीक की बहिन जयन्ती ने भी मिश्रणी व्रत ग्रहण किया। मृगावती जैनधर्म की अनुयायिनी थी, इसके और भी उल्लेख मिलते हैं।^{१९}

महावीर का दर्शन और आधुनिक मानस

- १ हिंसा के कारण
- २ अहिंसा के साधक का आचरण
- ३ अहिंसा की सहयोगी भावनाएँ
- ४ अहिंसा का व्यावहारिक रूप

महावीर का दर्शन और आधुनिक मानस

महावीरकामीन साहित्य, नत्ता और दर्शन पर दृष्टिपात करने के बाद एक महत् प्रश्न खड़ा होता है कि आधुनिक मानस के लिए वह कहाँ तक उपयोगी है जन-साधारण के लिए। इसका सीधा उत्तर यह है कि साहित्य युगीन अवश्य होता है, पर उसे सार्वभौमिक भी होना चाहिए। सार्वभौमिकता साहित्य की वास्तविक निकष है। महावीर के साहित्य की सार्वभौमिकता यही है कि वह आज के संवत्स जीवन के लिए भी उभी प्रकार उपयोगी है जिस प्रकार २५०० वर्ष पहले था। इस दृष्टि से वह हमारी बसीदी पर धरा उतरता है।

समता और अहिंसा तथा अपरिग्रह और अनेकान्त इन चार महावर्तमानों पर महावीर का मनुष्य उपदेश प्रासाद निमित्त हुआ है। इनमें भी अहिंसा प्रधान है जो सभी को समाहित किये हुए है। जीवन के हर क्षेत्र की समस्या का समाधान अहिंसा के आचरण में मन्त्रित है। यह अमन सन्धुति की आधारशिला है। उसका प्रत्येक सिद्धान्त अहिंसात्मक भावना से अनुप्राणित है। मैत्री, प्रयोज, काश्य और माध्यस्थ भावों का अनुवर्तन, समता और अपरिग्रह का अनुचिन्तन, नय और अनेकान्त का अनुग्रहण तथा समय और सञ्चारित्र का अनुसाधन अहिंसा के प्रमुख रूप हैं। उसकी पुनीत पृष्ठभूमि अहिंसा से अनुरजित है।

अहिंसा समत्व पर प्रतिष्ठित है। समत्व की प्राप्ति सम्मर्पदर्शन और सम्मर्पज्ञान से युक्त सम्मर्पचारित्र पर अवलम्बित है। इसी चारित्र को धर्म कहा गया है। यही धर्म शास्त्र है। यह समत्व राग-द्वेषादिक विकारों के प्रनष्ट होने पर उत्पन्न होने वाला विमुक्त आत्मा का परिणाम है। धर्म से परिणत आत्मा को ही धर्म कहा गया है। धर्म की परिणति निर्वाण है।

संवग्गमि निब्बानं वैशालीमनुवरामविह्वेह ।
जीवस्त चरित्तोदो वंसज्जगणप्पहरणादो ॥
चारित्तं सलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति निहिदुत्तो ।
मोहवग्गोहविहीणो परिणामो अप्पणो हि समो ॥^१

इस प्रकार धर्म वस्तुतः आत्मा का स्पन्दन है जिसमें

सद्गुणभूति,

सहिष्णुता, परोपकार वृत्ति आदि जैसे गुण विद्यमान रहते हैं। वह किसी जाति या सम्प्रदाय से संबद्ध नहीं। उसका स्वरूप तो सार्वजनिक, सार्वभौमिक और सार्वमानविक है। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र और विश्व का अन्तुत्पान ऐसे ही धर्म की परिणामा में सम्भव है।

धर्म और अहिंसा में शब्द-भेद है, गुण-भेद नहीं। धर्म अहिंसा है और अहिंसा धर्म है। श्रेष्ठ उसका व्यापक है। अहिंसा एक निषेधात्मक शब्द है। विधेयात्मक अवस्था के बाद ही निषेधात्मक अवस्था आती है। अतः विधिपरक हिंसा के अनन्तर इसका प्रयोग हुआ होगा। इसलिए सयम, तप, दया आदि जैसे मानवीय शक्तों का प्रयोग पूर्वोक्त रहा होगा।

हिंसा के कारण

हिंसा का मूल कारण है प्रमाद और कषाय। इनके बनीभूत होकर जीव के मन, वचन, कार्य में क्रोधादिक भाव प्रकट होते हैं, जिनसे स्वयं के शब्द प्रयोग का भावप्राणों का हनन होता है। कषायादिक की तीव्रता के फलस्वरूप उसके आत्मप्राण रूप द्रव्यप्राणों का भी हनन सम्भव है। इसके अनिरिक्त दूसरे की मर्मांतक वेदनादायक भयवा पर-द्रव्यव्यपरोपण भी इन्हीं भावों का कारण है। इस प्रकार हिंसा के चार भेद हो जाते हैं—स्व-भाव हिंसा, स्व-द्रव्यहिंसा, पर-भावहिंसा और पर-द्रव्यहिंसा^१। आचार्य उमास्वाति इसी को संक्षेप 'मे प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपण हिंसा' कहते हैं। इस लिए मिश्रुओं को कैसे चलना-फिरना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए आदि प्रश्नों का उत्तर दिया गया है कि उसे यत्नपूर्वक अप्रमत्त होकर उठना-बैठना चाहिए, यत्नपूर्वक भोजन-मापण करना चाहिए।

कहाँ चरे ? कहां बिट्ठे ? कहाँमासे कहां सए ?

कप भुंजन्तो भासन्तो ? पाव कम्म न अणई ?

जयं चरे जय बिट्ठे जयमासे जयं सए ।

जयं भुंजन्तो भासन्तो पाव कम्म न अणई ॥^२

हिंसा का प्रमुख कारण रागादिक भाव है। उनके दूर हो जाने पर स्वभावनः अहिंसा भाव जाग्रत हो जाता है। दूसरे शब्दों में समस्त प्राणिमों के प्रति सयम भाव ही अहिंसा है, 'अहिंसा निउण दिट्ठा मज्झिमुएणु सज्जमो'।^४ जगत का हरेक प्राणी अधिकाधिक सुख-प्राप्ति के साधन जुटाता है। उसे मरने की आकांक्षा नहीं होती।^५ उसके ये सुख-प्राप्ति के साधन अहिंसा और संयम की पृष्ठभूमि में जुटाये जाने

१ पुरयार्थमिदुत्पाय, ४३

२ दत्तवर्णनि, ४, ७-८

४ बही ९, १

५ बही, ९, ११

चाहिए। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के अभ्युत्थान के लिए यह आवश्यक है कि वे परस्पर एकात्मक सम्बन्ध भागें से आवद्ध रहे। उससे सौहार्द, आत्मोत्थान, स्वाधीनता, सुख और समृद्धि के पवित्र साधनों का उपयोग होता रहे, यही पथार्थ में उत्कृष्ट मंगल है।

धम्मो भंगलपुविचट्ठ अहिंसा संजमो तथो ।

देवा पि सं नमसंति अरत्त धम्मो तया मनो ॥^६

अहिंसा के साधक का आचरण

अहिंसा के एक-देश का पालन गृहस्थवर्ग करता है और संबंधों का पालन मुनिवर्ग करता है। उन्हीं को जैनशास्त्रीय परिभाषा में कमल अभुवन और महाव्रत कहा गया है। स्वमचारित्र और विरमचारित्र इसी के पर्यायाधिक शब्द हैं। गृहस्थ वर्ग आरम्भी, उद्योगी और विरोधी रूप स्थापित हिंसा का त्यागी नहीं रहता जबकि मुनिवर्ग मूढम और स्थूल, दोनों प्रकार की हिंसा से दूर रहता है।

मन, बचन और वाच से समीचीन व्यक्ति स्वयं-पर का रक्षक तथा मानवीय गुणों का आगार होता है। शील, सधर्मादि गुणों से आपूर व्यक्ति ही सत्पुरुष है। जिसका चित्त मनीष व पापों से दूषित रहता है, वह अहिंसा का पुजारी कभी नहीं हो सकता। जिस प्रकार पिमाता, छेदना, छानना और रगड़ना इन चार उपायों से स्वर्ण की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार द्युत, शील, तप और दया रूप गुणों के द्वारा धर्म एवं व्यक्ति की परीक्षा की जाती है।

संजमु सीमु सज्जमु तव सूरि हि गुण सोई ।

वाह देवक संघायजमु उत्तम कंचणु होई ॥^७

जीवन का सर्वांगीण विकास करना सम्यक् का परम उद्देश्य रहता है। सूत्र-वृत्ता में इस उद्देश्य को एक रूपक के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया गया है। वहाँ बताया गया है कि जिस प्रकार कटुभा निर्मल स्थान पर निर्भीक होकर वसता-फिरता है किन्तु भय की आशंका होने पर पीछे ही अपने अंग-प्रत्यंग प्रकट कर लेता है और भय विमुक्त होने पर पुनः अंग-प्रत्यंग कोमाकर वसना-फिरना प्रारम्भ कर देता है, उसी प्रकार समीचीन व्यक्ति अपने साधनामार्ग पर बड़ी सतर्कतापूर्वक वसता है। संयम की विरोधना का भय उपस्थित हो जाने पर वह ध्वेन्द्रियों व मन को आत्मज्ञान (अन्तर) में ही घोपन कर लेता है।^८

६ दशवैकान्तिक, १, १, देखिए, धम्मपद १६-६

७ भाव पाहुँड, गाथा १४३ की टीका

८ जहाँ धुम्मे से अगाध भए देहे समाहरे ।

एव पावार्थ मेहावी अज्जल्लेख समाहरे ॥—सूत्रवृत्ता १, ८-१६

दर्शन और चिंतन

भववान महावीर का व्यक्तित्व महामहिम और चिन्तनशील था। उन्होंने सामाजिक परिस्थितियों का सूक्ष्म चिन्तन कर मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने सामाजिक, भाष्यात्मिक और व्यावहारिक क्षेत्र में सम्बद्ध जो दार्शनिक चिन्तन प्रस्तुत किया वह अनुपम था। २५०० वर्षों के बाद भी व्यावहारिक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता और आवश्यकता में क्षीणता नहीं आयी। यद्यपि उनके उपदेशों की गार्वभीमिकता का प्रचलन प्रमाण है।

धर्म और अहिंसा

धर्म शब्द कहा व्यापक है। हर लोग का धर्म पृथक्-पृथक् होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मायका के धर्म की सीमाया भी पृथक्-पृथक् होती है। इसलिए महावीर ने अहिंसामूलक धर्म की प्रस्थापना कर इस विवाद को समाप्त करने का प्रयत्न किया।

दार्शनिक मूल में अहिंसा, तपस और त्याग को धर्म कहा है और इसी को उत्कृष्ट मतम अर्थात् ब्रह्मज्ञानकारी बनाया है।^१ आचार्य बुद्धबुद्ध ने आगमज्ञान, तत्त्वार्थज्ञान और तपस इन तीन तत्वों को निर्वाण-प्राप्ति के कारण माना है।^२ दार्शनिक और बुद्धबुद्ध के विचारों में कोई अन्तर नहीं। मात्र कथन के प्रकार में अन्तर है। अहिंसा और तप एव आत्मज्ञान और तत्त्वार्थज्ञान एक-दूसरे के परिपूरक हैं। अतएव धर्म के इन तीनों तत्वों को ही हम जैनधर्म कह सकते हैं। जैनधर्म का समूचा आचार-विचार इन्हीं तत्वों पर आधारित है। इन तीनों तत्वों का सम्यग्ज्ञान और सम्यक् आचरण ही आत्मज्ञान और भिद-विज्ञान की प्राप्ति में मूल कारण बनते हैं।

स्वामी बानिकेय ने धर्म के स्वरूप को इस प्रकार प्रस्तुत किया

धम्मो वत्थुसहाओ
रयणसार्थं च धम्मो

१ धम्मो मगलमुत्तिट्ठं अहिंसा

२ धम्मो वत्थुसहाओ

हम परिभाषा में धर्म के चार तत्त्व दिये गये हैं—

(१) वस्तु स्वभाव धर्म है, (२) सामाजिक दश गुण धर्म है, (३) सम्मर्प-दर्शन, सम्मग्नज्ञान और सम्मक्चारित्र रूप रत्नत्रय का वागम धर्म है, और (४) जीवों का संरक्षण अथवा जीव दया धर्म है।

प्रत्येक वस्तु का अपना एक स्वभाव होता है और वह स्वभाव गैर-परिवर्तनीय होता है। यदि परिवर्तन आता भी है तो वह अस्थिर होता है। जल का स्वभाव क्षीतल है पर-पदाथं अग्नि आदि के सघोष में उगमों जो उद्यमता आती है वह घण्टा-समय दूर हो जाती है। मानव का स्वभाव मानवता है। राग-द्वेषादि कारणों से वह अभिभूत अवस्था हो जाती है पर नष्ट नहीं होती। अतः आत्मा अथवा जीव का वस्तु-स्वभाव सामाजिक विचार नहीं है। उनका स्वभाव तो स्वभाव में स्थिर रहता और स्व-स्वरूप में रमण करना है। मोह-दोष से विरहित आत्मा का यही परिणाम स्वभाव कहलाता है।

चारिणं खलु धम्मो धम्मो ओ सो समोति निदिट्ठो।

मोहबन्धोहविहीणो परिणामो अण्णो हि समो ॥^४

चिररत्न

भगवान महावीर ने साधना की सफलता के लिए तीन कारणों का निर्देश किया है—सम्मादर्शन, सम्मग्नज्ञान और सम्मक्चारित्र। इन तीनों तत्वों को 'चिररत्न' कहा गया है। दर्शन का अर्थ थोड़ा अथवा व्यावहारिक परिभाषा में आत्म-नुभूति कह सकते हैं। थोड़ा और आत्मानुभूति पूर्वक ज्ञान और चारित्र का सम्मक् योग ही मोक्ष रूप साधना की सफलता में भूतभूत कारण है। मात्र ज्ञान अथवा चारित्र से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए इन तीनों की समन्वित अवस्था को ही मोक्षमार्ग कहा गया है।^५

मोक्ष प्राप्ति का रत्नत्रय के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है। जिस प्रकार भीषण पर सम्मक् विश्वास, ज्ञान और आचरण बिना रोमी रोम से मुक्त नहीं हो सकता उसी प्रकार ससार के जन्म-मरण रूपी रोम से मुक्त होने के लिए सम्मादर्शन, सम्मग्नज्ञान और सम्मक्चारित्र का सम्मक् योग होना आवश्यक है। क्रियाहीन ज्ञान व्यर्थ है और अज्ञानियों की क्रिया निष्फल है। दावानल से व्याप्त वन में जिस प्रकार नेत्रहीन व्यक्ति इधर-उधर दौड़कर भी जल आता है और पशु व्यक्ति देखते हुए भी जलने से बच नहीं पाता। यदि अथा और पशु दोनों साथ हो जायें और नेत्रहीन व्यक्ति के कन्धे पर पशु बैठ जाये तो दोनों का उद्धार हो जाये। पशु मार्ग-निर्देशन कर ज्ञान का कार्य करे और नेत्रहीन पक्षी से चलकर चारित्र का कार्य करे तो दोनों बिना जले तगर

४ प्रवचनमार १, ७

५ सम्मादर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। —तत्त्वार्थगूज, १, १

में आ सकते हैं। एक चक्र से रस नहीं बनता। अतः सम्म्यग्दर्शन पूर्वक सम्म्यग्ज्ञान और सम्म्यक्चारित्र्य का संयोग ही कार्यकारी हो सकता है।

हन्तं ज्ञानं क्रियाहीनं हन्ता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् विज्ञान्यतो हण्यः परावर्त्तयि च धंगुनः॥
संयोगमेवेह चरन्ति तज्ज्ञानमेकधर्मेभ्यः रसः प्रयानि।
अप्यस्य धंगुनश्च बने प्रविष्टो तौ सप्रपुत्रतो मगरे प्रविष्टौ॥^६

जीनदर्शन में जो स्थान सम्म्यग्दर्शन का है वही स्थान बौद्धदर्शन में सम्मत्-
शिट्ठि का है। दोनों का अर्थ भी प्रायः समान है। माधव के लिए माधना के प्रारम्भ में
यह आवश्यक है कि वह जिन माधना-पथ का अनुसरण करना चाहता है उसे समुचित
रूप में समझें और विद्वान् बनें। यही ध्येया विस्वाम और ज्ञान है। आत्मा की ये दोनों
महिनस्वर शक्तिवाँ हैं। जिस व्यक्ति में पदार्थ जाने जाते हैं वह ज्ञान है और जिसमें
तत्त्व-अध्यान होता है वह दर्शन है। आत्मा में इन दोनों की प्रवृत्ति होती है। अथवा
इन्द्रियद्वि में आत्मा और ज्ञान में कोई भेद भी नहीं है। जैसे मेघ-पटल के टूटने की
पूर्व का प्रकाश और प्रकाश एक साथ ही प्रकटित होता है वैसे ही दर्शनमोह का उपशम,
साध या क्षयोपशम होने ही आत्मा में सम्म्यक्दर्शन की प्रवृत्ति होती है। जिस समय
आत्मा में सम्म्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसी समय मत्तज्ञान, व्युत्तज्ञान, आदि मनि-
ज्ञान, व्युत्तज्ञान आदि रूप में सम्म्यग्ज्ञान बन जाने हैं, पर वही पूर्ण दर्शन ही ज्ञान में
सम्म्यक्त्व साने के कारण पुण्य है अतः उसे ही प्रथम ग्रहण किया गया है। बाद में
सम्म्यग्ज्ञान और सम्म्यक्चारित्र्य की रक्षा गया है। इन तीनों में पूर्ण की प्राप्ति होने पर
उत्तर की प्राप्ति अनिवार्य है अर्थात् हो भी और न भी हो। पर उत्तर की प्राप्ति में
पूर्व का साम निश्चित है। जैसे जिस माधक को सम्म्यक्चारित्र्य होगा उसे सम्म्यग्दर्शन
और सम्म्यग्ज्ञान होंगे ही, पर जिसमें सम्म्यग्दर्शन है उसे सम्म्यक्चारित्र्य हो भी सकता
है और नहीं भी हो सकता है।^७

अथवान महावीर ने अपने समूचे चिन्तन के प्रस्ताव को इन तीनों तत्त्वों के
मुरदे स्तम्भों पर ही स्थापित किया है। हम मध्ये में उनका परिचय निम्न प्रकार कर
रहे हैं।

सम्म्यग्दर्शन

अथवान महावीर ने समूचे जगत् को दो तत्त्वों में विभाजित किया है—जीव
और अजीव। उनके परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करने की दृष्टि से आसन्न, वन्ध, सवर,
निर्वरा और मोक्ष का आशयान किया गया है। इन सान तत्त्वों अथवा उनमें पुण्य-पाप

६ तत्त्वार्थवार्तिक १. १. २१ तुलनार्थं देगिए—आह्मं विज्ञापयण पमोक्क,

—सूत्रहता १. २२-२१

७ वही १. १. २६-२६

विचार नर पदाथों में रहि होता सम्मर्शन है ।^{१८} उपासनामि ने इन तथ्यों के अर्थ में ध्यान करने को सम्मर्शन बताया है ।^{१९} अरिहन्तगुप्त में 'अरिहन्त मेरे सम्मर्श' प. १५५५ तापु मेरे मुख है और अरिहन्त जिस द्वारा प्रकटित तन्त्र ही कारागिरि त है' ऐसा स्वीकार करने को सम्मर्शन कहा गया है ।^{२०}

गच्छा देव बड़ी हो गतता है जो विद्यालय, भगवान, निशा, मय, होए, माया, मोय, रति, आरति, लोच, अनापमान, चौर्यचर्म, मरगर, मय, दिना, प्रेम, चीन्हा और हास्य इन अठारह वोगों से विमुक्त हो, चीन्हाभी हो, सर्वज्ञ हो और हितोपदेशी हो । गच्छा आवम बन है जो आप्त के द्वारा कहा गया हो, यदि शक्ति विरोध के द्वारा अनुत्पद्य हो, प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से जितने किसी प्राविरोध न जाना हो, आप्तोपदेशी तथ्यों का उपदेष्टा हो, सर्व प्राणियों के हित का पादक हो और विद्यामार्ग को दूर करने वाला हो तथा गच्छा मुख बह है जो पवेति के विषयो की आद्या-मुल्या के बचपन न हो, सभी प्रकार के आरम्भो से रहित अपरिपक्वी हो, सदा ज्ञान, ध्यान और तप म निरत रहना हो ।

आप्तोपदेशप्रदोयेन सर्वमेवागमेतिना ।
प्रवित्त्य निद्योगेन नाग्यया ह्याप्तता भवेत् ॥
आप्तोपदेशमुत्तममहृष्टेष्ट विरोधकम् ॥
तत्त्वोपदेशद्वारसारं शास्त्रं कायपट्टनम् ॥
विषयाभावतातीतो निराश्रयोपरिपह ॥
सामर्थ्यान्तपोरत्ततपस्वी स प्रसक्तते ॥^{२१}

सम्मर्शन के प्रकार

सम्मर्शन दो प्रकार का होता है—निसर्गज और अप्रियमय । जो बाह्योपदेश के बिना प्रगट होता है वह निसर्गज है तथा जो परोपदेश से प्रगट होता है वह अप्रियमय है । इन दोनों सम्मर्शन के प्रकारों में आत्मप्रतीति होना मुख्य कारण है । मोह-मीयकर्म की प्रकृतियों के अनुसार सम्मर्शन के तीन भेद भी माने गये हैं—आप्तोपदेश, साधोपदेश और सायिक । आप्तोपदेश सम्मर्शन में विद्यास्वादिक कर्म प्रकृतियों का उपशम हो जाता है, वे शांत होकर बैठ जाती हैं, साधोपदेश में कर्मों के एकदेश का शय हो जाता है और एकदेश का उपशम होता है पर सायिक मात्र में कर्म की आत्यन्तिक निवृत्ति ही होती है ।

तत्त्वार्थ सम्मत्त, — मोक्षपादक, ३८

१८ तत्त्वार्थ ध्यान सम्मर्शनम्, — तत्त्वार्थसूत्र, १, २

१९ अरिहन्तो मह देवो जावग्रीवाए मुसाहृणो मुदणो ।
त्रिणयणत तत सम्मत्त मए भविय ॥

२० रत्नकरण आवकाचार, ५, ६-१०

दिगम्बर दन्तों से चारित्र्य की अपेक्षा से सम्पददर्शन के दो भेद दिये गये हैं—
मराम सम्पददर्शन और बीतराम सम्पददर्शन । मराम सम्पददर्ष्टि के प्रथम (रागादिक
की सम्पदा), मदेम (समारमय), अनुकम्पा (प्राणिदया), और आतिथय (बीषादिक
तरबों का अतिथय), ये चार प्रकार के शुभ भाव होने हैं । पर बीतरामी सम्पददर्ष्टि
स्व-नवमाय में स्थिर रहना है और निर्विकल्प दया में विचरण करना रहता है । वह
बहिरागमा के विरपों को शोचकर अगतरागमा के विरपों का चिन्तन करता है और तदैव
सेवी, प्रमोद, कारुण्य तथा माधुर्य्य भावना की भाषा रहता है । इत्यादि साहित्य में
मराम चारित्र्य और बीतराम चारित्र्य का उल्लेख हुआ है किन्तु दर्शन की पूर्णता तो
चतुर्ध्व गुणस्थान में हो जाती है अथ. उनमें कोई भेद नहीं दिये गये ।

तत्पत्तर

अमरान महावीर ने समाज के मूलमन्त्र जीव और अजीव की आध्यात्मिक क्षेत्र
में मूल तरबों के रूप में प्रस्तुत किया । ये मूल तरब दस प्रकार हैं—जीव, अजीव,
आयव, अयव, संवर, निर्वरा और मोक्ष । पुण्य और पाप की वृक्ष रूप में मिला देने
पर इन्हीं तरबों को मय बदार्थ बड़ा गया है । पानि साहित्य में आय उद्धरण में महावीर
के इन निद्वान्त की प्राचीनता निद्व होती है ।^{१२}

जीव

पंच इन्द्रिय, मनोबल, बचनबल, नायवर, आयु और स्वामोक्षद्वारा, इन दस
प्राची में से अपनी पर्यायानुसार दहीत प्राची के द्वारा जो जीवता या, जी रहा है और
जीवेता, इन वैज्ञानिक जीवन गुण भावे की जीव कहते हैं । वह जीव चेतना स्वभाव
है । चेतना अवस्था उपयोग ज्ञान-दर्शन रूप है । अमुक्त परिणामों के परिणामन में भी वह
मर्मण है । समाधि भावों और ज्ञानावरणादिक कर्मों का वर्ता तथा भीता है । स्वदेह-
भाव है । उत्पन्नमय स्वभावी है । जब तक कर्मों में संयुक्त है, वह गमारी है और जब
कर्मों से विमुक्त हो जाता है तो वह मुक्त जीव कहलाता है ।^{१३}

जीव का ज्ञान-दर्शन स्वभाव है इग्निए जीव गुणी और ज्ञान-दर्शन गुण हैं ।
गुण और गुणी की मर्मणा विमुक्त नहीं किया जा सकता । जब का गुण दीप्त्य अग्नि
आदि कारणों से कुछ समय के लिए उग्न किया जा सकता है पर ईधन आदि
कारणों के दूर होने पर जब पुनः धपने स्वभाव में आ जाता है । इसी प्रकार आत्मा
जब तक कर्मों में बँधा रहता है, उसका ज्ञान-दर्शन स्वभाव उद्धाटित नहीं हो पाता और
जैसे ही वह कर्म-मय से विमुक्त हो जाता है, उसका ज्ञान-दर्शन तद्व हो जाता है ।

आत्मा ज्ञान के बराबर और ज्ञान ज्ञेय के बराबर कहा गया है । ज्ञेय भोक

१२ मर्यामनिदाय, जूनदुक्तमन्त्रमुत्पत्त

१३ जीवोदि हवदि वेदा अवशोवविनेगिरी पद कता ।

भीता य देहमत्तो न हि मुक्तो कर्ममनुत्तो ॥ —पञ्चास्तिराय, २७

तथा अलोक में व्याप्त है, अतः ज्ञान भी सर्वगत है। कर्म-विमुक्त विमुक्त आत्मा उन सर्वगत पदार्थों को जानने-देगने में सक्षम हो जाता है। अनीन्द्रिय ज्ञानी होने से उसे सुख-दुःख नहीं होते।^{१४}

जीव दो प्रकार के होते हैं—संसारी और मुक्त। संसारी जीव संसारी होते हैं और मुक्त जीव अशरीरी। शरीर पाँच प्रकार का होता है—औदारिक, वैश्विक, साधारण, तैजस और वामंश। इनमें तैजस और वामंश शरीर सभी जीवों के होते हैं। साधारणतः औदारिक शरीर मनुष्य और पशु-पक्षियों में तथा वैश्विक शरीर देव और नारकियों में होता है।^{१५}

संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—जल और स्थावर। जिनमें चलने-फिरने की शक्ति नहीं रहती वे स्थावर हैं और जो इस प्रकार की शक्ति से युक्त हैं वे जल कहलाते हैं। स्थावर कायिक जीव पाँच प्रकार के होते हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निवायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। ये जीव केवल एक स्पर्शेन्द्रिय वाले होते हैं। इनमें से जलकायिक और वायुकायिक जीव गति-स्थावर भी कहलाते हैं।

दो इन्द्रियों से लेकर पाँच इन्द्रियों वाले जीव जल कहलाते हैं। द्वेन्द्रिय (स्पर्श और रसना) जीव—कृमि, जोंक आदि। त्रिन्द्रिय (स्पर्श, रसना, घ्राण) जीव—चींटी आदि। चतुर्न्द्रिय (स्पर्श, रसना, घ्राण और श्रवण) जीव—भ्रमर, मक्षिका, पतंग आदि, और पचेन्द्रिय (स्पर्श, रसना, घ्राण, श्रवण और ध्वनि) जीव—मनुष्य; गाय, बैल, पशु, पक्षी आदि नियंत्रण, नारकी और देव। मनुष्य प्रायः कर्मज होते हैं। नियंत्रण सम्पूर्णतः और कर्मज दोनों होते हैं। नारकी मनुष्य और उपवास (रज-वीर्य के बिना) जन्म वाले होते हैं और देवों के स्त्री-पुरुष रूप उपवास जन्म होता है। सम्पूर्णतः का तात्पर्य है—वे जीव जो माता-पिता के रज-वीर्य के बिना ही अपने शरीर के योग्य पुरुष परमाणुओं के द्वारा शरीर की रचना करते हैं।

अजीव तत्त्व

जिग इन्द्रियों की चेतना न हो, अथवा चित्ते हेतुपादेय का ज्ञान नहीं हो वह अजीव कहलाता है। इस अजीव तत्त्व के पाँच भेद हैं—पुरुष, धर्म, अधर्म, आकाश और वायु। जीव की मिलावर द्वांष्ट्र द्वांष्ट्र भी कहा जाता है। वे पाँचों अजीव द्रव्य एक साथ रहें हुए भी पृथक् और स्वतन्त्र हैं। इनमें पुरुष द्रव्य को छोड़कर तीनों द्रव्य निष्कर्म, अवस्थित, अकारण भवका अभूतिक हैं। पुरुष द्रव्य स्त्री और मूर्तिक हैं। स्त्री का तात्पर्य है—शरीर, रज, वन्य और बने वाला पदार्थ।

पुरुष

मूर्तप्राण, स्मृतप्राण सत्त्वान, धेनु, अश्वत्थार, श्यामा, आतप और उद्योत

पुद्गल की पर्यायें हैं।^{११} वैज्ञानिक दृष्टि को आवास का गुण मानने हैं। पर यह सत्य नहीं। दृष्ट का कोई आकारादि अवश्य होना चाहिए अन्यथा वह रेडियो, रिबॉन आदि से पकड़ा नहीं जा सकता। आधुनिक विज्ञान का मीटर और इनकी भी पुद्गल का ही काल्पनिक है। स्वप्न, दृष्ट, धाराण, हास्यद्वन्द्व, आत्मजीवन, उद्भूत आदि भी पुद्गल स्वप्न हैं।

पुद्गल के चार भेद हैं—स्वप्न, दृष्ट, प्रदेय और परमाणु। दो या दो से अधिक मार्गों में विभक्त किया जा सकने वाला कभी द्रव्य का भाव स्वप्न है। दृष्टि-बोझ होने वाले सभी पर्याय स्वप्न रूप हैं। स्वप्नों के दो अंग प्रदेय, दृष्ट, प्रदेय और अविभाज्य परमाणु कहलाते हैं। परमाणुओं के ही लयोजन और विद्योजन से स्वप्नों की उत्पत्ति होती है। पुद्गल भूँटि बहुप्रदेयी है अतः उसे अविभाज्य कहा गया है। वे पुद्गल द्रव्य-रूप अनादिवास से अवस्थित हैं और अनन्तवास तक अवस्थित रहेंगे। जो भी परिवर्तन होता है, वह उनकी पर्यायों में होता है। पर्याय रूप परिवर्तन से पुद्गल का रूप रूप भट्ट नहीं होता। दृष्टिपूर्ण पुद्गल की दृष्टि कहा गया है और उन द्रव्य का स्वप्न उत्पत्ति, व्यव और धीव्य रूप माना गया है। सगार का कोई भी पर्याय द्रव्य की इन परिभाषा की सीमा से बाहर नहीं है।^{१२} वे पुद्गल तत्काश, अनन्तान और अनन्त प्रदेयी हैं। पर परमाणु एक प्रदेयी है। वह आवास के एक प्रदेय की ही स्वीकृति करता है। पुद्गल और जोर एक प्रदेय से दूसरे प्रदेय में गमन कर सकते हैं अतः वे निश्चित हैं।

धर्म और अधर्म

पुद्गल के समान धर्म और अधर्म द्रव्य भी अविभाज्य हैं। ये धर्म-धर्म के विशेष परिभाषिक दृष्ट हैं। धर्म द्रव्य स्वयं तो निश्चित और अविभाज्य है पर वह जीव और पुद्गल की समझ करने में उदासीन अवस्था बाह्य महामक अवस्था होता है। विम प्रकार रूप मझी की तरफ की प्रेरणा नहीं देना पर तरती हुई मझी की महामक अवस्था होता है उसी प्रकार धर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों की परिभाषा का कारण होता है। उसके बिना कोई भी जीव तथा पुद्गल स्वाभाविक नहीं कर सकता।^{१३}

अधर्म द्रव्य भी धर्म द्रव्य जैसा ही है। वह जीव और पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से धर्म की तरह कारण होता है।

धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्त हैं। वे लोह से तिल-तैलवत् व्याप्त हैं। अविभाज्य प्रदेयी हैं और निश्चित हैं।

१५ तरवार्यधूम २-२४

१६ मद्रव्यमजगत्, उत्पत्तिमजगत्प्रतीत्युक्त सत्, —बही, २-२६-३०

१७ पञ्चांगिद्वय, ८३-८६

आकाश

आकाश भी अमितीय है। उसका स्वभाव जीव, पुद्गल, धर्म, भाव और काल इत्येको अवकाश देना है, अवगाहन देना है। उसके दो भेद हैं—लोकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश में ही धर्म-अधर्म इत्येक-दोसरे के व्यापक रहते हैं। वही जीव और पुद्गल भी मगि वनी रहती है। जहाँ तक ये इत्येक हैं वहाँ तक वे अपूर्ण पदार्थ हैं। लोकाश का अन्त आकाश अलोकाकाश है। आकाश अनन्त, निरञ्ज

काल

काल को कुछ जैनाचार्यों ने स्वतन्त्र इत्येक नहीं माना और कुछ ने इसे स्वतन्त्र इत्येक के रूप में स्वीकार किया है। मगवती सूत्र में भी द्वितीय सिद्धांत विद्यमान है।^{१०} कालों में दो मान्यताएँ हैं। दिगम्बर मान्यता काल को स्वतन्त्र इत्येक के रूप में स्वीकारती है जबकि श्वेताम्बर परम्परा उसे पृथक् इत्येक नहीं मानती। उदाहरण तत्त्वार्थसूत्र (तत्त्वार्थाधिपत सूत्र) में 'कालस्वतन्त्रे' (५-३६) पाठ विद्यमान है। अतः अनुसार काल वही स्वतन्त्र इत्येक नहीं है पर दिगम्बरीय तत्त्वार्थसूत्र में 'जातार' का विधान है जिसके अनुसार वही काल को पृथक् इत्येक स्वीकार दिया गया है।

आचार्य पुनरुद्ग ने भी काल का व्याख्यात स्वतन्त्र इत्येक के रूप में ही किया है। तदनुसार काल अक्षरी अक्षरी इत्येक है। जीव और पुद्गल के परिणाम दोनों पर व्यवहार-काल का ज्ञान होता है और चूँकि बिना निश्चयकाल के जीव और पुद्गलों का परिणाम नहीं हो सकता, इसलिए जीव-पुद्गल के परिणाम से निश्चयकाल का ज्ञान होता है। व्यवहार काल पर्याप्त प्रमाण होने से अप्रमत्त है जो निश्चयकाल इत्येक प्रमाण होने से निश्चय है।^{११} यही, यष्टा, भूत, मरिच्य, शर्वा, आदि व्यवहारकाल हैं और पर्याप्त की वर्तना (स्वतन्त्रता की अनुभूति) से उसके निश्चयकाल का ज्ञान चलता है।^{१२}

जीव के पुनरुद्ग का कारण उसके स्वयं के कर्म होते हैं। पुनरुद्ग के रूप विषय का उभोग यह स्वर्णानि भूत इत्येक के द्वारा करता है। अतः पुनरुद्ग और वीर्यविषय माने जाते हैं। मगवती जीव इत्येक कर्मों के उदय-उत्थान के स्वयं का स्वयं-कारण अशुद्ध भाव करना है। उनमें उभे तन्वीन कर्मों का स्वयं होना वही तन्वीन कर्मों का स्वयं-कारण करना है। औदारिकारिणी वरीर काणा है, औदारिकारिणी उदय होते हैं। औदारिकारिणी से निश्चय-वहन होता है, निश्चय-वहन से स्वयं-कारण का उदय होता है। औदारिकारिणी से स्वयं-अवयव करना पड़ता है।^{१३}

^{१०} तत्त्वार्थसूत्र, १००

^{११} तत्त्वार्थसूत्र, १००

—तत्त्वार्थसूत्र ५-२२

के ज्ञानावरणीय कर्म गर्वपात्री हैं। ईश्वरीय ज्ञानदान नहीं देना, ज्ञान के उद्घाटन को दिया देना ज्ञान प्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करना, ज्ञानी को निन्दा करना, भर्त्सना देते कर्म हैं जिनसे ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध होता है।

२ दर्शनावरणीय कर्म—जो कर्म परार्थ-दर्शन प्रत्यक्ष आत्मदर्शन में होते हैं वह दर्शनावरणीय कर्म हैं। इनके चतुर्दशोपाकरण, अथवा दर्शनावरण, अवधिर्ज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण से चार भेद होते हैं। परार्थदर्शन में करने में निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रवृत्ता, प्रवृत्ता-प्रवृत्ता और शयानगुडि (शयानगुडि) ये चार कारण भी होते हैं। अतः दर्शनावरणीय कर्म के भी भेद बड़े बड़े हैं।

३ वेशनीय कर्म—इन कर्मों से जीव को गुण-गुणानि की अनुभूति होती है इसलिए इनके दो भेद हैं—गानावेदनीय और अगानावेदनीय। यहाँ की गुण की अनुभूति सांसारिक पदार्थों में अनुरक्ति के कारण होती है अतः यथार्थ नहीं है। अमनोसंस्पृष्ट, शब्द, रूप, गन्ध, रस, मन्, बन्धन, वायु, दुःखता से आठ प्रकार के असाक्षात् वेदनीय कर्म हैं।

४ मोहनीय कर्म—सभी कर्मों में यह कर्म प्रबलतम है। इसके कारण जीव हेयोपादेय का ज्ञान नहीं कर पाता। सगरण का प्रमुख कारण मोह ही है। अन्य भाव तो उसके परिपाक्षर्धर्त हैं। रामदेव्यादि के कारणों से ही जीव की बुद्धि तात्त्विक दर्शन और आचरण की ओर नहीं जाती। इसलिए इसके मूलतः दो भेद किये गये हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं—सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यक्त्व-मिथ्यात्व। इनके कारण तत्त्व-ध्वजा नहीं हो पाती।

चारित्रमोहनीय कर्म के कारण जीव की प्रवृत्ति सदाचरण की ओर नहीं झुकती। इसके मूल दो भेद हैं—कषाय और नोकषाय। कषाय का अर्थ है—जो आत्मा को कष्ट दे। उसके मूल भेद सोलह होते हैं। चार प्रमुख भेद हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। हीनाधिकता के आधार पर इन चारों के बार-बार भेद होते हैं—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याक्षानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याक्षानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ और सज्ज्वसन क्रोध, मान, माया, लोभ। इन कषायों के कारण जीव क्रमशः नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देववर्ग में जाता है। नो कषाय का तात्पर्य है—ईश्वर मनोविहार। उनकी संख्या नौ है—ह्रास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्वीवेद, पुवेद और नपुंसकवेद।

इन प्रकार मोहनीय कर्म के कुल अष्टादस भेद होते हैं। इन कर्मों के कारण जीव मिथ्यादृष्टि और चारित्रहीन होता है। केवलज्ञानी ध्युत, सत्य, धर्म और देवो का अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का बन्धहेतु है और कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीय कर्म का।

५. आयुर्कर्म—जिस कर्म से जीव की आयु का बन्ध होता है, वह कर्म आयुर्कर्म है। इसके चार भेद हैं—नरबायु, तिर्यञ्चबायु, मनुष्यायु और देवायु।

६. नामकर्म—यह कर्म पारीर, इन्द्रिय आदि की सम्पत्-असम्पत् रचना का कारण है। इनके मूलतः दो भेद होते हैं—शुभ (पुण्य रूप) और अशुभ (पापरूप) मति, जाति आदि के भेद से इसके ६३ भेद होते हैं।

७. मोक्षकर्म—इस कर्म के प्रभाव से जीव को उच्चमोक्ष और नीचमोक्ष प्राप्त होते हैं। अतः दो भेद हैं। उच्चमोक्षकर्म पुण्य रूप है और नीचमोक्षकर्म पापरूप।

८. अन्तराय कर्म—यह कर्म सत्त्वार्थों में विघ्न उपस्थित करता है। इसके पाँच भेद होते हैं—दान, ताम, मोघ, उपमोघ और वीर्य।

इन कर्मों को दो भागों में विभक्त किया गया है—पानिया और अपानिया। जो जीव के ज्ञानादि गुणों का घात करते हैं वे पानिया कर्म हैं। इनकी सख्या चार है—जानावरण, दसंतावरण, मोहनीय और अन्तराय। शेष चार कर्म अपानिया कहे जाते हैं। पानिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर अपानिया कर्मों की कोई विशेष शक्ति नहीं रह जाती। इन आठ कर्मों में प्रबलतम कर्म मोहनीय है। यही विकारों का जनक होता है। इसलिए इसका सर्वाधिक उत्कृष्टत्व माना गया है। जैसे कर्म के अनुसार ही उसकी स्थिति होनी है।

आस्रव और बन्ध

पाप कर्म पुण्य का प्रतिपक्षी है। अतः पाप वह है जो आत्मा को पुण्य कार्यों की ओर से दूर रखे। यह कर्म भी अशोभन प्रकृति में सम्बद्ध है। जीव स्वयं पाप करता है और उनका फल भी उसे स्वयं भोगना पड़ता है। समवर्षाग में अठारह प्रकार के पापों का उल्लेख मिलता है—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, माग, माया, सोम, राग, द्वेष, बलह, अम्यास्थान, पैशुन्य, पर-निरिवाद, रति, अरति, माया-मृषा और मिथ्यादर्शन इत्यादि अठारह क्रियायें वस्तुतः पाप नहीं बल्कि पाप के हेतु हैं। पाप के हेतुओं का वर्णन आस्रव की सीमा में आता है।

जीव के प्रदेशों में कर्मों के प्रवेश द्वार को आस्रव कहते हैं। अतः आस्रव कर्मागमन का हेतु है। मन, बचन और काय के परिस्पन्द को शोष कहते हैं और यह योग ही आस्रव है। जैसे जलागमन द्वार से जल आता है उसी तरह योग प्रणाली से आत्मा में कर्म आते हैं। जैसे बीला बपटा वायु के द्वारा साईं बई धूलि को चारों ओर से चिपटा लेता है उसी तरह बधाम रूपी जल से बीला आत्मा योग के द्वारा साईं बई कर्म रज को सभी प्रदेशों से ग्रहण करता है। अथवा जैसे गरम लोहपिण्ड यदि पानी में डाल दिया जाय तो वह चारों तरफ से पानी को सोचता है उसी तरह से कृपाय से सतप्त जीव योग से लाये गये कर्मों की सर्वतः ग्रहण कर लेता है।^{२२}

योग दो प्रकार का होता है—शुभ योग और अशुभ योग। शुभ योग से पुण्य का आस्रव होता है और अशुभ योग से पाप का। आस्रव दो प्रकार का है—साम्प-

रायिक (आत्मा के स्वरूप का अभिव्यक्त करने वाला) और ईर्ष्यायिक (गोदम्य) साम्प्रदायिक आशय मकपायी जीवों के होता है और ईर्ष्यायिक अकपायी जीवों के।

आचार्य वृन्दकुन्द ने आशय के चार भेद किये हैं—मिथ्यात्व (विचित्रीय अविचरित (हिंसादि सावध बाधों में सगे रहना), कपाय (क्रोधादि परिणाम), मोह (मन, वचन, काय की प्रवृत्ति)। उपास्वाति ने साम्प्रदायिक आशय के ३६ भेद हैं—स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रिया, क्रोधादि चार कपाय, हिंसादि पाँच अशत प्रोक्त कृत्वादि पञ्चीस क्रियाएँ। पञ्चीस क्रियाओं से आकाशय होता है और सेव का द्रव्याशय के हैं। इन्द्रिय, कपाय और अशत कारण हैं और क्रिया उनका कार्य। वे निमित्त-नैमित्तिक भाव हैं। इन आशयों में तीव्र, मन्द, ज्ञान, अज्ञान आदि वेद हीनाधिकता आती जाती है।

कर्माशय के विशेषतः दो निमित्त होते हैं—जीव और अजीव। सा समारम्भ, आरम्भ, मन-वचन-काय रूप विधोग, कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोधादि चार कपाय जीवनिमित्तक हैं और निवर्तना (उत्पत्ति), निदोष (स्थापना), सर्वत्र (मिलाना), तथा निमित्त (प्रवृत्ति) अजीव निमित्तक हैं।

चेतन के साथ अचेतन कर्म का सम्बन्ध होता अथ है। अज्ञानी के सामानिक भाव कर्मव्यवस्था के कारण है। कर्मों के विषय में हम पीछे देख चुके हैं।

संवर और निर्वरा

संवर का तात्पर्य है कर्माशयन को रोचना। जिस प्रकार मोटा में छिपी हुई आग को जल का प्रवेश रोक दिया जाता है उसी प्रकार कर्मों के आग-प्रसार को रोक कर देना संवर है।^{२३} यह संवर दो प्रकार का है—द्रव्यसंवर और भावसंवर। पक्ष पक्षों का तत्त्व जगत्तु युग योग है। यही युग योग पुण्य कर्म का और संवर का कारण होता है। जीव से इन कर्मों का वृषक होता निर्वरा है। संवर और निर्वरा का ध्यान हम सम्यक्चारित्र्य के सम्बन्ध में आगे करेंगे।

मोक्ष

जिन प्रकार अग्नि आदि उपायों से धानु और मिट्टी दोनों अलग अलग हो जाते हैं। वैसे ही तत्त्व और समय द्वारा जीव का कर्मव्यवस्था होना मोक्ष है।^{२४} यही जीव का भाव मध्य होता है। जीव की विमुक्तिकामना प्रकट होने पर उसे अनन्तज्ञान, अनन्तज्ञान, अनन्तज्ञान और अनन्तजीव प्रकट होते हैं। मोक्ष से कोई भी जीव पुनः मगार में बर्तित नहीं आता।

इन सत्यतथ्यों और वस्तुओं के स्वरूप पर दृष्टिमान करने में यह स्पष्ट है कि महावीर ने अथर्वमूर्ष्टि को ईश्वर कर्तृक मानने की विमूर्ष्ट आकाशवाणी नहीं

२३ अथर्वविरोध संवर. मन्वाचर्मपुर — ६.०

२४ अथर्वमन्वाचर्मविरोधम्या हृत्पुनश्च विदयोऽतो मोक्ष, — यही, १०, २

ममत्ता । पुद्गल इन्ध ही मिश्र-मिश्र प्रकार से पर्यायों में परिवर्तित होना रहता है । धर्म, अधर्म और आकाश इन्ध निश्चिन्त हैं । अतः उनसे सधर्म की सम्भावना ही नहीं सकती । इस स्थिति में ईश्वर को मानने की कोई आवश्यकता ही नहीं है । जीव अपने कर्म के अनुसार सुख-दुःख का भोक्ता होता ही है, फिर उसे ईश्वर की क्या उपयोगिता । बन्धुन, ईश्वर बन्धु का वर्ना-हर्ता है भी नहीं ।

सम्प्राप्तार्थ के आठ धर्म

सम्प्राप्तार्थ की प्राप्ति के लिए साधक में निम्नलिखित आठ गुण (धर्म) होना आवश्यक है—

१. निःशङ्कित—सन्तान्तरों और देव, गार्ह, गुरु के विषय में किसी प्रकार का संदेह न होना ।

२. निःकांक्षित—सांसारिक वैभव, विषय-भोगों की इच्छा न करना ।

३. निर्विचिकित्ता—आत्मा के गुणों में प्रीति अथवा धर्म के फल में संदेह न करना ।

४. अनुकूलवृत्ति—विषयादृष्टियों में आसक्त न होना ।

५. उपगृह्येन अथवा उपबृंह्येन—गुण धर्म की निम्ना वा प्रसारण करना समाधि भावनाओं से आरम्भधर्म की वृद्धि करना ।

६. स्थितिकरण—धर्म में चलित होने पर सम्प्राप्य में अथवा-नयना ।

७. वास्तव्य—सहस्रांशिकों से प्रेमभाव रखना । और

८. प्रभावना—जैनशासन के साहाय्य की प्रकाशित करना ।

सम्प्राप्तार्थ के विधानक दोष

सम्प्राप्तार्थ की प्राप्ति में कुछ विधानक तत्त्व होते हैं जिनके होते हुए साधक मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता । ये विधानक तत्त्व पञ्चीय हैं—तीन मूढ़तायें, आठ मद, छह अनायतन, शकादि आठ दोष ।^{१२} अज्ञानता पूर्वक कार्य करना मूढ़ता है । वह तीन प्रकार की होती है—भौकमूढ़ता (भुवं स्नानादि करना), देवमूढ़ता (मुक्तित देवताओं की पूजादि करना), और पामण्डिमूढ़ता (पामण्डियों को मानना) । अपनी संश्लेषता और हमरे की निम्नता प्रगट करना मद कहलाते हैं । इनकी सख्या आठ है—ज्ञान, पूजा, वृत्त, जाति, बन्ध, श्रद्धा, तप और धरिरे । जो धर्म के आधार नहीं हैं वे अनायतन कहलाते हैं । इनकी सख्या छह है—कुदेव, कुमताबमन्दी, कुशास्त्र, कुतप, कुशात्मन और कुनिष्क । सम्प्राप्तार्थ जीव इन पञ्चीय दोषों से विरहित होकर भावना करता है और विमृदिनम अवस्था की प्राप्ति करता है ।

सम्यग्ज्ञान

ज्ञान के प्रकार

सम्यग्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञान वह है जिसमें हमने ममत्त्व गहरे गहरे तरीके से प्रतिबिम्बित हो जाय। सामान्यतः ज्ञान तीन प्रकार का होता है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अनुभवज्ञान, संपर्यवसान और चैतन्यज्ञान।

जो ज्ञान हमें साक्षात् वाच्य इन्द्रियों तथा मन से उत्पन्न होता है वह चैतन्य कहलाता है। मतिज्ञान की उत्पत्ति का ऋण है—अवयव, ईहा, अवास और कर्मा। पदार्थ का साक्षात्कार होता अवयव है। जैसे सामने वह कोई व्यक्ति आ रहा है। वह दृष्टिगो है या उत्तरी इत्यादि प्रकार से उसके विषय में विशेष ज्ञान की दृष्टि मिलती है। तदनन्तर आचार-प्रकार आदि से यह विवरण कर लेता कि वह उत्तरी ही है, या अवयव है। इस अवयव को ज्ञानान्तर में नहीं भ्रूयना धारणा है। यह चारों प्रकार का ज्ञान बहुत, बहुविध, अल्प, अल्पविध, शिष्ट, अशिष्ट, निःशुद्ध, अनिशुद्ध, उत्तम, अशुद्ध, शुद्ध और अशुद्ध, रूप से बारह प्रकार का होता है।

मतिज्ञान से जाने गये पदार्थ के विषय में विशेष बिलनात्मक ज्ञान श्रुतज्ञान कहलाता है। इसके मूल में दो भेद होते हैं—अवप्रविष्ट और अववाह्य। अप्रविष्ट के बारह भेद हैं—आचारम, श्रुतज्ञान, स्थानांत, समवायांत, व्याख्याप्रज्ञान, श्रुत, धर्मकथांत, उपायकाध्ययन, अल्प इत्यादि, अनुसंगोपादिकदशांत, प्रत्यक्षांतरगत, विषयभूतान्त और दृष्टिवादांत। दृष्टिवादांत के अन्तर्गत पूर्व के उपायपूर्व आदि चार भेद हैं। अववाह्य के भी सामान्यिक आदि चार भेद हैं। अन्य प्रकार से भी श्रुतज्ञान में चार भेद दिये गये हैं—अक्षर, अनक्षर, सति, असति, सम्यक्, मिथ्या, साक्षि, संपर्यवसित, संपर्यवसित, गमिक, अगमिक, अप्रविष्ट और अववाह्य।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, दोनों ज्ञान इन्द्रियों और मन से उत्पन्न होते हैं। फिर भी दोनों में अंतर है। श्रुत ज्ञान परोपदेशपूर्वक शब्द का अनुसरण करता है पर मतिज्ञान में शब्द का सम्बन्ध नहीं होता। त्रैलोक्य में चक्षु और मन को अपाप्स्यगो माना गया है।

इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना त्रिगुण ज्ञान के द्वारा भूत-संविध्यत ज्ञान के सीमित पदार्थों तथा दूरवर्ती वस्तुओं को जाना जा सके वह अवधिज्ञान है। इसके दो भेद होते हैं—भवप्रत्यय और क्षयोपशमप्रत्यय। भव के निमित्त से उत्पन्न होने वाला अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक है। यह देव और नारकियों के होता है तथा कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला ज्ञान क्षयोपशमप्रत्ययिक है। यह मनुष्य और तिर्यकों के होता है। स्वरूप की ओर अवधिज्ञान के छह भेद भी माने गये हैं—अनुगामी, अतनुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित।

दूर के मन की बात को जानने वाला ज्ञान मन संपर्यवसान है। यह दो प्रकार का होता है—श्रुतमति और विपुलमति। श्रुतमति ज्ञान सीधी और सरल बात को

ही जान पाता है पर विद्युत्चालि चुटिम और कटिम ज्ञान को भी जानता है। अतः अद्भुतानि मन पर्यवसान से विद्युत्चालि मन-पर्यवसान विद्युत्जनर है। एक प्रतिगामी और दूसरा अप्रतिगामी है।

वेद्यज्ञान मध्यम द्रव्यों की समस्त पर्यायों को सुगन्ध जानता है। द्रव्य ज्ञान के उन्मय हो जाने पर भाषक सर्वज्ञ कहमाने लगता है।

इन पाँचों ज्ञानों में से एक साथ अधिक से अधिक ज्ञान होने है। वेद्य-ज्ञान अवेना ही होता है।

मतिज्ञान, ध्युत्तमान और मन्वविज्ञान विषय भी होते हैं, और मिथ्याज्ञान भी होते हैं। मिथ्याज्ञान होने पर उन्हें दूषितज्ञान, कुध्युत्तमान और कुमन्वविज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान और ध्युत्तमान में मध्य, विषय और अनध्यवसाय से तीन दोष रहते हैं परन्तु मन्वविज्ञान में मध्य नहीं होता।

प्रमाथ और नय

चैतन्य के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उन्माद-अव-शोध्य रूप तथा अनन्तधर्मात्मक होता है। उनके निर्दोष और परिपूर्ण ज्ञान की प्रमाण कहते हैं। प्रमाण वस्तु के समस्त वहनुओं का ज्ञाता होता है पर नय उनके एकदेश की ही ग्रहण कर पाता है। चूँकि पदार्थ अनन्त अवयवी होते हैं इसलिए नय की अवस्था होते हैं। मत्स्य में उसके दो भेद दिये गये हैं—द्रव्याधिक नय और पर्यायाधिक नय। द्रव्याधिक नय पदार्थ के मूल स्वभाव पर अथवा उनके वैकल्पिक अविशेष रूप पर विचार करता है तथा पर्यायाधिक नय उसकी सन्निक पर्यायों अथवा रूपों की उपस्थित करता है। उदाहरणन आत्मा मूलतः अन्त-अन्तर, विद्युत् और ज्ञान-दर्शनवान है। परन्तु रूपों के कारण वह सगार में जग-मरण करता रहता है। अतः उसकी मूल स्थिति को द्रव्याधिक नय व्यक्त करता है और दूषित स्थिति पर्यायाधिक नय के अन्तर्गत आती है।

चैतन्य साहित्य में द्रव्याधिक नय के लिए निदधनय, शुद्धनय, परमार्थनय, प्रुध, पुनार्थ, स्वामाधिक, स्वमहीनय आदि तथा पर्यायाधिक नय में लिए व्यवहारनय अनुजनय, अन्तरमार्थनय, अधूक, अभूतार्थ, अन्तर्माधिक, परतन्त्र आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ फिर भी यदि व्यक्ति निदधनय की ध्यान में रखकर वस्तु के व्यावहारिक स्वरूप का रूपन अथवा अनुकरण करता है, तो वह अनुम माथों की दूर वह धूम माथों की प्राप्त करता है और फिर धूम माथों में सुदोषयोग की ओर बढ़ जाता है। अतः सुदोषावस्था प्राप्त करने के लिए जीव को निदधनय और व्यवहारनय दोनों का यथा-सुगार अनुकरण करना अन्यायव्यव है। दोनों का सामन्विक विमल ही मुक्ति का कारण कहा गया है।

नय-नवकथ

वस्तु के भाव धर्मों की चीज पर उनके सिंगी एक धर्म अथवा स्वभाव का विवेचन करना नय है। प्रमाण वस्तु के सर्वदेश की ग्रहण करता है और नय एकदेश

को। आगम दृष्टि अथवा वस्तु तथ्य को गही समझने के लिए नय का समझना बड़ा आवश्यक है। नय की मर्यादा मात्र है—

(१) नैगमनय—यह नय सत्य मान को ग्रहण करने वाला होता है। जैसे प्रोफी व्यक्ति को सिंह कह देना।

(२) सप्रहृतनय—सहस्र अथवा सामान्य पदार्थों को तदनुकूल दृष्टि से वर्णित करना सप्रहृतनय है। जैसे—ममार में चूँकि जड़, चेतन, सभी प्रकार के पदार्थों का अस्तित्व है इसलिए उन्हें 'मत्' कह देना।

(३) व्यवहारनय—संप्रहृतनय के द्वारा ग्रहीत पदार्थों का विभाग करके उन्हें ग्रहण करना व्यवहारनय है। जैसे—सामान्य रूप मनुष्य जाति को भारतीय, ईन आदि रूप से विभक्त करके ग्रहण करना।

(४) ऋजुमूलनय—यह नय पदार्थ की वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करता है।

(५) शब्दनय—यह नय पदार्थ को उसके लिए, कारण, संख्या काल आदि भेद से विभक्त करता है। जैसे माया और कलत्र शब्दों में विभिन्न भेद के कारण न अर्थ होने पर भी उनमें भेद व्यक्त करता।

(६) सममिच्छ नय—यह नय शब्दभेद के अनुसार अर्थभेद करने वाला होता है। इन्द्र, शक्र, पुरन्दर, पर्यायवाची शब्द होने पर भी मिथ्यार्थक होते हैं।

(७) एकवृत्तनय—जो जैसी किया करने वाला होता है उसको उसी का पुकारना। पूजा करते समय पुजारी कहना और रोटी बनाते समय उसी को रमो कहना एकवृत्तनय के अन्तर्गत आता है।

ये मान्य नय उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय को ग्रहण करने वाले होते हैं। प्रथम तो नय दृष्ट्याधिक है और अन्तिम चार नय पर्यायाधिक हैं। इसी तरह प्रथम चार नय अर्थनय हैं और दोन तीन नय शब्दनय हैं।

अनेकाल्पवाद और स्वाज्ञा

जैनदर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ अनन्तधर्मात्मक होता है। उन अनन्त धर्मों को माध्यात्म व्यक्ति एक साथ ग्रहण करने में न देना मर्यादा है और न जान मर्यादा है। सभी उम्र अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने-जानने हैं। दृष्टिकोणों की विविधता सब का कारण बनती है। उस सत्य को दूर करने के लिए हमें दृष्टिकोण को स्वीकार दिया जाना आवश्यक है। किसी भी एक दृष्टिकोण के प्रति बड़ाग्रह और समझना ही मायना न हो। यह अनेकाल्पवाद और स्वाज्ञा की मूल भूमिका है। अनेकाल्पवाद विचारों में स्वल्प दृष्टिकोण अपनाते को कहना है और स्वाज्ञा वस्तु के बचन करने में। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। "यह वस्तु एकाल्प" ऐसी ही है" में 'ही' के स्थान पर कहा "भी" शब्द का प्रयोग किया जाता है। अन्तः सत्य का द्वार बन्द नहीं हो जाता।

प्रत्येक पदार्थ में उत्पाद, विनाश और स्थिति का त्रयात्मक स्वभाव रहता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए जेनाचार्यों ने एक उदाहरण उपस्थित किया है। तीन व्यक्ति एक मुनार की दुकान पर गये। उनमें से एक को सोने का घड़ा चाहिए था, दूसरे को सोने का मुकुट चाहिए था और तीसरा मात्र सोना चाहता था। सोने के घड़े से मुनार को मुकुट बनाना देखकर घड़ा चाहने वाला शोक संतप्त हो जाता है, मुकुट चाहने वाला प्रसन्न हो जाता है और सोना चाहने वाले को न शोक होता न हर्ष। वह तो मध्यस्थ बना रहता है। इस प्रकार वस्तु में उत्पाद, ध्वय और स्थिति तीनों घटों का अस्तित्व रहता है—

घट-भौति-मुचर्णाथी नाशोत्पादस्थितिध्वयम्।

सोऽप्रयोद-माध्वस्य जनो घाति सहेतुहम्॥

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि वस्तु में सत् और असत् दोनों प्रकार के वर्ग विद्यमान रहते हैं। परन्तु उनके निर्धारण में किसी प्रकार का सराव अथवा सन्देह नहीं रहता। इसीलिए अनेकान्तवाद को सन्देहवाद और सशयवाद नहीं कहा जा सकता।

स्वादाद बचन करने की अनेकान्तवादात्मक प्रणाली है। 'स्वादा' का अर्थ है कथञ्चिन्। उपर्युक्त प्रमाण और तथ्यों का विवेचन स्वादाद के अन्तर्गत आता है। किसी भी प्रश्न का उत्तर सात प्रकार से दिया जाता है। इसीलिए स्वादाद के सन्दर्भ में सप्तमयी का प्रयोग किया जाता है—

(१) स्वादमि

(२) स्वाध्मास्ति

(३) स्वादस्तिनामि

(४) स्वादवक्तव्य

(५) स्वादस्तिवक्तव्य

(६) स्वाध्मास्तिवक्तव्य,

(७) स्वादस्तिनास्तिवक्तव्य

इस सप्तमयी में अविरोध रूप से विधि-प्रतिषेध की बख्शना सम्प्रहित है। सात प्रकार के प्रश्न अथवा प्रश्नासायें सप्तमयी की सरचना में मूल कारण हैं। प्रत्येक पदार्थ स्व-रूप की अपेक्षा से सत् है और पर-रूप की अपेक्षा से असत् है। यह विधि-प्रतिषेध रूप स्वादाद का स्वरूप है। यहाँ 'एव' शब्द का प्रयोग अवधारणा के अर्थ में होता है जिसमें सत्य, अनिश्चय, अव्याप्ति, अनिश्चयिता आदि दोषों की निवृत्ति हो जाती है।

अनेकान्तवाद और स्वादाद अहिंसा की प्रतिष्ठा करने वाले सिद्धान्त हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मानावरण को सौहार्दमय बनाने के लिए इन सिद्धान्तों की मद्दती आवश्यकता है। सचय और विवाद का मूल कारण होता है—एक दूसरे के दृष्टि-

कोण को स्वीकार नहीं करना । इस कदाग्रह को जोड़कर महिष्मतापूर्वक मनना की भूमिका पर पारम्परिक सनातन और वैष्णव मतभेदों में दूर दिया जा सका है । विश्वशांति को प्रस्थापित करने में यह सिद्धान्त एक अमोघ साधन बन सका है ।

सम्यक्चारित्र

चारित्र का अर्थ है—आचरण करना । सम्यक् आचरण वह है जिसमें पाप-क्रियाएँ न हों, कषाय न हो, माय निर्मल हो, तथा पर-पदाओं में साक्षात् सि न हों ।^{२६} यह सम्यक्चारित्र दो प्रकार का होता है—गृहस्थों के लिए और मुनियों के लिए । गृहस्थों का चारित्र—देवचारित्र, मागार चारित्र, अनुब्रत अथवा धारक का कहा जाता है तथा मुनियों का चारित्र—मकमचारित्र, अनन्तरचारित्र, महाश्रम मुनिधर्म कहा जाता है ।

आवकपर्य

आवक का सर्वप्रथम ब्रह्मण्ड यह है कि वह हिमा, शूठ, चोटी, बुलीन परिग्रह इन पाँचों पापों को छोड़ दे । हिमा की सीमा में सभी पाप प्रत्यर्पण हो जाते हैं । फिर भी उन्हें अधिक स्पष्ट करने के लिए उनको पृथक्-पृथक् कह दिया गया है । का तात्पर्य है—प्रमाद के बंध होकर किसी को दुःख पहुँचाना अथवा प्राणों का करना । राग-द्वेषादि भावों के रहते हुए अयत्नाचार रूप प्रमाद अवस्था में जी अथवा न मरे, किन्तु हिमा हो ही जाती है । क्योंकि उन कषाय-भावों से व्यक्ति का घात कर लेता है ।^{२७} इसी प्रकार राग-द्वेषादि भावों के न रहने पर हि जाने पर भी हिमा नहीं कहलाती । इसलिए जिसके परिणाम हिमा रूप हो गए का कोई काम कर सके या नहीं उसका फल उसे अवश्य भोगना पड़ेगा तथा व्यक्ति के शरीर से हिमा हो गई हो और परिणाम विस्तृत हो तो उसे हिमा का नहीं होना पड़ेगा ।

अविषामादि हि हिमा हिताकलभाजनं भजत्येकः ।

हृत्वाप्यपरो हिता हिताकलभाजनं न स्यात् ।^{२८}

पूनीत पच पापों के माय ही आवक मद्य, मांग, मधु तथा पच उदम्बर (उमर, कटुमर, विनमन, बह और पीपल जिनमें जल जीव रहते हैं) का त्याग है । जैनधर्म धारण करने की यह प्रथम शर्त है कि व्यक्ति मद्य, माता, मधु तथा उदम्बर पचों का त्याग करे । इन्हीं को अष्टपूषगुण कहा गया है । उपर्युक्त पाँच पचों का परिणामन तथा पानि-शोदन त्याग भी उसे आवश्यक है । यह दृष्ट्यक्ष वेदाङ्ग मद्रिग्य में अपवादालमक स्थिति में मधु को शास्त्र माना गया है ।

२६ पुराणार्पणसिद्धि, १६

२७ बही, ४६-४७

२८ बही, ११

इन राज्यों के सामान्य करने तथा उनमें विभाग करने की दृष्टि से तीन दण्डप्रती (विभाग, देवदण्ड और जनसंख्यादण्ड) तथा चार विभागप्रती (साधारण, प्रोप्रीयोरान, प्रोप्रीयोरानविभाग तथा सर्वोच्च विभाग) के विभागन का भी विचार किया गया है। सामान्य के लिए बहुत ही आवश्यक है कि राज्य के लोग सब चीजें हैं। यदि बहुत दण्ड का सामान नहीं रहेगा तो सामान्य है। जनसंख्या के प्रतीक मन्त्रों का राज कर बहुत दिना का सामान बन जाय।

साधारण दण्डप्रतीक चार राज्यों का सामान्य कर में बहुत बरतता है। जनसंख्या करने के प्रतीक विभाग प्रतीकप्रती की ओर बहुत ही बनी जाती है। सामान्य के इन सामान्यिक सर्वोच्च विभाग को सर्वोच्च के 'सर्वोच्च' कहा गया है। इनकी संख्या साधारण है—सर्वोच्च, जन, सामान्यिक, प्रोप्रीयोरान, सर्वोच्चविभाग, सर्वोच्चविभाग/साम, सर्वोच्च, सामान्यविभाग, सर्वोच्चविभाग, सर्वोच्चविभाग और सर्वोच्चविभाग। इनमें सामान्य के बहुत ही अधिकारी दण्डप्रतीक बहुत ही हैं और वे बहुत ही आवश्यक हैं। सामान्य, सामान्य और सर्वोच्च विभागों को दण्डप्रतीक का सर्वोच्च कहा जाता है। वे सामान्य आवश्यक हैं, तथा सर्वोच्च और सामान्य विभाग के सामान्य विभाग बहुत ही हैं और वे बहुत ही आवश्यक हैं। उनमें सर्वोच्च विभाग एक सामान्य विभाग दण्डप्रतीक में बहुत बरतता है, पर सामान्य विभाग सर्वोच्च करने पर उसे दण्डप्रतीक बनना आवश्यक हो जाता है। इनके बाद यह सर्वोच्च विभागप्रतीक मुनि बन जाता है।

विभागप्रतीक सामान्य में ११ विभाग प्रतीक, जन, सामान्यिक, प्रोप्रीयोरान, विभाग, सर्वोच्च, सर्वोच्चविभाग, सामान्यविभाग, सर्वोच्चविभाग अथवा सर्वोच्चविभाग, सर्वोच्चविभाग तथा सर्वोच्चविभाग हैं। सर्वोच्चविभाग सामान्य और प्रोप्रीयोरान के दो प्रकार का है। प्रथम चार विभागों के नाम दोनों सामान्यप्रतीक में एक सामान्य है। सर्वोच्चविभाग का नाम विभागप्रतीक सामान्य में सर्वोच्च है और सर्वोच्चविभाग सामान्य में सामान्य है। विभागप्रतीक सामान्य में सर्वोच्चविभाग को सर्वोच्च विभाग दिया है जबकि सर्वोच्चविभाग सामान्य में सर्वोच्च विभाग में उसका समावेश होता है। सर्वोच्चविभाग का नाम सर्वोच्चविभाग सामान्य में दिया है और विभागप्रतीक सामान्य में सामान्य है। विभागप्रतीक सामान्य में सर्वोच्चविभाग का प्रतीक है वह सर्वोच्चविभाग सामान्य के सर्वोच्चविभाग में सर्वोच्चविभाग हो जाता है। यदि इन विभागों में सामान्य सर्वोच्चविभाग बहुत ही करने के साथ साथ सामान्य का भी समर्थन नहीं करना है। सर्वोच्चविभाग सामान्य में जो सर्वोच्चविभाग विभाग है, उसे ही विभागप्रतीक सामान्य में सर्वोच्चविभाग विभाग है क्योंकि इनमें सामान्य कर सामान्य विभाग के सामान्य ही होता है।^{१०}

२१. वे नाम विभिन्न राज्यों में विभिन्न रूप में पाये जाते हैं।

१०. सामान्य चर्च—देवेन्द्रविनि विभागी, पृ० २०

मुनिधर्म

निरपरिग्रही भुनि के लिए जीवनसाहित्य में मिश्र, अनगारी, धमन और तीक्ष्णता का प्रयोग हुआ है। श्रमण का अर्थ है वह साधन जो मोह, रागादिक विषयों से रहित हो अथवा उस अवस्था को प्राप्त करने के लिए एक तपसा पथिक हो।^{११} साधु के लिए दिग्भ्रमर परम्परा में पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ, पंच इन्द्रियसंयम आवश्यक, केसलुब्धचनता, अचेतनता, अस्नानता, भू-शय्या, शिथिल भोजन, मलपावन और एकमुक्ति इन अट्ठार्वीस मूलगुणों का परिपालन आवश्यक है।^{१२} दोषान्तर परम्परा में पञ्चमहाव्रत, पञ्चेन्द्रियविजय, चारणपापविजय, मादमरय, वरणमय, शेषकृत क्षमावान्, वैराग्यवान्, मनगमाधि, वचनममाधि, कायममाधि, ज्ञानमस्मरणा, दर्शन सम्पन्नता, चारित्र्यसम्पन्नता, वेदना को समभाव से सहना तथा मारणान्तिक वृष्ट करने पर भी समभाव रखना ये २७ मूल गुण सन्तों में माने गये हैं।

अहिंसा, तप्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं। इन पाँच महाव्रतों की रक्षा करने के लिए पञ्च समितियों का पालन किया जाता है—१. ईर्ष्या समिति (चार हाथ आगे की भूमि को देखकर चमना), २. भाषा समिति (मात्रपाती पूर्वक वचन बहना), ३. एषणा समिति (निर्दोष और प्रामुक्त आहार ग्रहण करना), ४. आदान-निक्षेपण समिति (पोछी-कमण्डलु आदि उपकरणों को मरनपूर्वक रखना और उठाना), तथा ५. उत्सर्ग समिति (निर्जीव रथ पर मल-मूत्र विगर्जन करना)। साधक भुनि पञ्चेन्द्रियजन्य विषय-वासनाओं को जीतकर सुख-दुःख, शत्रु-मित्रादि में समता, तीर्थंकरों का स्तवन, वन्दना, प्रतिकर्मण (कृत अपराधों का शोधन), प्रत्याभ्यास (त्याग) तथा कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकों का भी पालन करता है।

जैन भुनि हिंसादि पञ्च पापों के फलों पर विचार कर उनसे पूर्णतः विरक्त होने के उपायों पर चिन्तन करता है। वैश्रो, प्रमोद, कारण्य और माध्वरूप्य भावों का अनुप्रेक्षण करता है तथा सवेग और वैराग्य की भावना प्राप्ता है। वह मन, बह्व और काय की प्रवृत्तियों को प्रशस्त पथ में नियोजित करता है, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, समम, तप, त्याग, आदिचर्य और ब्रह्मचर्य इन दश ब्रह्मों का प्रतीति प्राप्त करता है; अनित्य, असंख्य, संसार, एकरक, अमर्य, अनुचि, आसन्न, सत्वर, निर्वैरा, मोक्ष, बोधिदुर्मम, और धर्म इन बारह भावनाओं का अनुचितन करता है। सुषा, मृपा, क्षीय, उष्ण, दत्तमशक, आदि परीणहो को यथागमम शान्तिपूर्वक सहन करता है; एवं सम्यक् ज्ञान, अवधीर्घर्ष कृत्तिपरित्याग, रस परित्याग, विविध शय्यासन, (प्रतिगमनीयता) और कायक्षेत्र इन छः बाह्य तत्त्वों^{१३} तथा प्रायश्चित्त, विनय, वैवाचन, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान इन छह अन्तर तत्त्वों का पालन करता है।^{१४}

११ उतराध्यायन ३०.८

१२ बही. ३०.३०

यही यह दृष्ट्य है कि निर्वाण प्राप्ति के लिए निस्परिव्रही होना आवश्यक है। परिग्रह का सम्बन्ध मूर्छा, भयना और आसक्ति से विशेष है जो मुनिजन मर्यादित वस्त्र, पात्र आदि रखते भी हैं वे समय और सज्जा की रक्षा के लिए रखते हैं, भोग या राग के लिए नहीं—

अं पि कथं च पायं वा कम्बलं पायपुच्छयं ।

सं पि सज्जमसज्जद्वौ चारंति परिहरन्ति य ॥^{३३}

मयमणीज साधु समतापुर्वक कथायादि विचार भाषो पर विजय प्राप्त करता है और वह प्रयत्न करता है कि सुदम चरित्र में भी किसी प्रकार की विराधना न हो। वह न तो किसी प्रकार के सरकार की आशंका करता है और न ही घटादि की। वह तो निरापुल और निष्कषायी होकर भयम की साधना करता है। उद्गमादि दोषो से रहित होकर अनाधीन कर्मों से दूर रहते हैं। विरहविमुक्ति, समिति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रियनिग्रह, प्रतिवेगना, मुक्ति और अमिग्रह इन कारणों का पालन करता है। प्रतिमल अप्रमादी होकर दीन का परिपालन करता है तथा मार्ग और रीति ध्यान से दूर रहकर वर्मध्यान और शुभध्यान की प्राप्ति में सतत उद्योगी रहना है। ऐसे अप्रमादी और उद्योगी भयम की उन्मा सर्व, पर्वन, अग्नि, समुद्र, आकाश, तप, प्रसर, मृग, पृथ्वी, कमल, मूर्ध और वायु से दी गई है।

उत्पत्तिरिज्जमसागरनहयन्तत्तमसमो य को होई ।

भमरमिषपरणीजसदहरविषवत्तमो य सो समणो ॥^{३४}

इन उपायो से मायक मुनि अधिकाधिक आत्मविमुक्ति प्राप्त कर लेता है तथा ज्ञान में वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। मुक्ति-प्राप्ति का क्रम इन प्रकार मिलता है।^{३५}

१ जीव और अजीव का सम्बन्धान

२ जीवों की मति का ज्ञान

३ बन्धन और मुक्ति का ज्ञान

४ भोगविरति

५ आत्मन्तर और बाह्य तथोगों का परिपालन

६ मनगार मृति का स्वीकरण

७ भयम की साधना

८ आत्मगुणावरोपक कर्मों का निर्मूलन

९ केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति

३३ दशर्वकालिक, ६, २०.

३४ सूत्रसूतांग १-२-२-६.

३५ दशर्वकालिक ४, १२-२३: दशर्वकालिक : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० १५२

प्राचीन ज्ञान में जातिभेद का भयकर बहन्डर रखा हुआ था। उस समय समाज शासन, शक्ति, वैश्य और शूद्र इन चार प्रमुख वर्गों में विभक्त था। इस विभाजन से ऊँच-नीच के विचारों से प्रभावित होकर समाज की सघटना में द्वेष का विपाक बीज धर कर चुका था। उसे दूर करने के लिए महावीर ने यह क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किया कि त्रिनेन्द्र भगवान का यह धामन ऊँच-नीच सभी के लिए समान रूप से है, क्योंकि जिस प्रकार एक स्तम्भ के आधार से भग्नाव टिक नहीं सकता, उसी प्रकार एक पुष्प के आधार से जलजाल भी स्थिर नहीं रह सकता।

उच्चवर्णजनप्रायः समधेयं त्रिनेत्रिणाम् ।

नैवस्मिन् पुण्ये निष्ठेदेकस्तम्भ इवात्मनः ॥

इस जातिवाद को सुलझाकर बर्तने के लिए महावीर ने धर्म के स्थान पर कर्म का आधार लिया। उन्होंने कहा कि उच्च कुल में उत्पन्न होने मात्र से व्यक्ति को ऊँचा नहीं कहा जा सकता। वह ऊँचा सभी हो सकता है जबकि उसका चरित्र या कर्म ऊँचा हो। इसलिए महावीर ने चारों जातियों की समानता के आधार पर एक नई व्यवस्था की और उन्हें एक मनुष्य जाति के रूप में देखा (मनुष्यजातिरेवेव)।

कम्मुणा कम्भणो होई कम्मुणा होई कस्सिओ ।

बहस्सो कम्मुणा होई गुहो होई कम्मुणा ॥

साहायजनिपाचीनां कम्भानांपि तरसत ।

एदं च मानुषी जातिराचारेण विभज्यते ॥

महावीर का यह चिन्तन जातिगत चिन्तन के अधिक निकट है। अब जातिभेद और वर्णभेद का समय नहीं। कोई भी देना इन भेदात्मक तत्वों पर स्थायी रूप से स्थिर नहीं रह सकता। मानवता को सन्ध-मण्ड कर समझे ॥ देखते हैं प्रतिबिम्बित हो सकता है ?

एक ओर जहाँ महावीर ने आचार-क्षेत्र में क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किये वहीं दूसरी ओर विचारक्षेत्र में भी उन्होंने अभूतपूर्व योगदान दिया। जैसा हम पहले कह चुके हैं, उनका कहना था कि सर्वमाधारण व्यक्ति किसी भी धर्म या व्यक्ति को सर्वोन्नत नहीं जान सकता। विभिन्न संपत्तियों का कारण एकाधिक प्रतीति और उसी प्रतीति के लिए कदाग्रही बने रहना है। इसलिए 'ही' का दुराग्रह छोड़कर 'मी' का निर्बंधन किया जाना चाहिए। दूसरे की दृष्टि को समझना हमारा परम कर्तव्य है। यही उसके प्रति हमारा आदर है। प्रत्येक दृष्टिकोण में कुछ न कुछ सत्यान रहता है जिसे उपेक्षित करना सत्य का अपमान और अपमान करना होगा। विश्व शांति के लिए यह विचार अमोघ अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। महावीर ने इस निदान को बचन के क्षेत्र में स्याद्वाद और चिन्तन के क्षेत्र में अनेकान्तवाद की राजा दी है। सर्वधर्मसमन्वय के क्षेत्र में यह एक महीन चरण था। आचार्य हरिमद्रूपि ने

कहा है कि कल्पों की किसी अर्थ विज्ञान में प्राप्ति न होकर निष्प्राप्ति ही विचार करना चाहिए ।

आपही वा नितीर्था पुनि
तत्र यत्र मतिरस्य निश्चिन्ता ।

पञ्चांगरहितस्य तु पुनि
यत्र तत्र मतिरेति निश्चिन्ता ॥

आचार्य हेमचन्द्र ने इसे और भी स्पष्ट करने हेतु समस्ययाद पर विचार दिया । उन्होंने कहा कि मैं किसी नीचेकर या विचारक का पञ्चांगी नहीं हूँ, वस्तु त्रिमरा वचन सर्वेगिष्ठ प्रतीत होगा उगी को मैं स्वीकार करूँगा ।

पञ्चांगतो न मे बीरे न ह्येव कपित्तादिषु ।

पुनितमद्वयं यस्य तस्य कार्यः प्रतिपद्यः ॥

आज की विश्व समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में इस सिद्धान्त को देना आज तो अधिकांश उन्नत समस्याएँ अपना समीपप्रद समाधान निश्चित रूप से पा सकती हैं । पारस्परिक दृष्टिबोध को न समझना ही सधर्म का मूल कारण होगा है । इस कारण को दूर कर मैत्रीभाव स्थापित करने में अनेकान्तवाद पूर्णतः सक्षम है ।

इस प्रकार भगवान महावीर ने समाज और देश को अभ्युन्नत करने के लिए सभी प्रकार से प्रयत्न किया । जायिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र से भ्रष्टाचार दूरकर सर्वोदयी विचारधारा को प्रचारित करने का अथक प्रयत्न किया । धनोपार्जन के सिद्धान्तों की व्यावस्था की ओर मोटा । भूक प्राणियों की वेदना की अहिंसा की चेतनाशायी सजीवनी से दूर किया, सामाजिक विषमता की सर्वमंशी अग्नि को समता के शीतल जल और मन्द बमर से शांत किया । जीवन के हृद अंग में अहिंसा के महत्त्व को प्रदर्शित कर मानवता के संरक्षण में महावीर स्वामी ने अधिकाधिक योगदान दिया । यह उनके महान् धितन और समीक्षण का ही परिणाम था ।

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध के जीवन-प्रसंगों का तुलनात्मक अध्ययन

१. परिचिन्ता
२. जन्म और पारिवारिक स्थिति
३. महानिस्त्रिषण्ण और संन्यासप्रवृत्ति
४. महावीर के वर्षावास और विहार-स्थल
५. संन्यासप्रवृत्ति के वर्षावास
६. महात्मा बुद्ध के वर्षावास और विहार स्थल
७. दोनों महापुरुषों का ध्यातव्य सम्पर्क
- अ. भयान ध्यातव्य सम्पर्क बनाये रखने वाले राज-परिचार

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध के जीवन-प्रसंगों का तुलनात्मक अध्ययन

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ई० पू० छठी सताब्दी के महान् क्रान्ति-कारी युग-युग्म थे। उन्होंने समाज में व्याप्त अल्प-श्रेणियों और आचार-शैथिल्य को दूर कर सम्यग्ज्ञान की पुष्टभूमि में सम्यक्-आचार का परिनिर्माण किया था। ज्ञान और आचार का यह समन्वय उनके उपदेशों की मूलभूत विशेषता कही जा सकती है। धम्म संहिता की आचारविन्यास पर लगे रहने पर भी दोनों महापुरुषों में दार्शनिक मतभेद भी कम नहीं रहे। इन मतभेदों ने ही बुद्ध की वृक्ष चर्म स्थापित करने के लिए प्रेरित किया जबकि महावीर ने अपने परम्परागत धर्म में समागत अमम्यक् प्रकृतियों को दूरकर उसी का प्रचार-प्रसार किया।

दोनों व्यक्तिगत प्रारम्भ में भले ही अपरिचित रहे हों पर बाद में वे अपरिचित नहीं रह सके। उनकी जीवन-घटनाएँ समान दिखती हुई भी भिन्न रही हैं। प्रस्तुत अध्याय में ऐसी ही घटनाओं का पर्यवेक्षण किया गया है।

परिनिर्वाण

महावीर और बुद्ध के काल निर्णय के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मत-उन सब तथ्यों को यहाँ पुहराने की आवश्यकता नहीं। बस, यहाँ मैं इतना कहना चाहता हूँ कि पालि-त्रिपिटक में आये ऐतत्सम्बन्धी उद्धरणों को दृष्टि से भ्राम्य नहीं किया जा सकता। महावीर के परिनिर्वाण से सम्बद्ध तीन उद्धरण त्रिपिटक में मिलते हैं।

(i) दीपनिकाय के पासादिकमुत्तन्त में बुद्ध सामवाय (शाक्य देश) जाकर आनन्द के माध्यम से बुद्ध की प्रसन्नतापूर्वक यह समाचार देता है कि महावीर का परिनिर्वाण पावा में हो गया और उनके मघ में वनह प्रारम्भ हो गई।

(ii) दीपनिकाय का सगीतिपरिपाय सुत भी लगभग ऐसा ही उद्धरण प्रस्तुत करता है। यहाँ बुद्ध स्वयं पावा में ठहरे हुए हैं और पासावागियों ने उन्हें नवनिमित्त स्थागार को उद्घाटित करने के लिए निवेदन किया। यहाँ बुद्ध के साथ आनन्द नहीं, बल्कि सारिपुत्र हैं जिन्होंने विद्युत्संघ की मुलाक़र यह समाचार प्रकार का विवाद न करने के लिए कहा। बुद्ध पावा आये हों और जो स्थागार

परिनिर्वृत हो जाने पर बुद्ध द्वारा उद्घाटित किया गया हो। यहाँ यह भी दृष्ट्य है कि बुद्ध सारिपुत्र से कहते हैं—“पिटि मे आगिमायिति, तमह् आयमिस्सामी नि।” इससे स्पष्ट है कि बुद्ध इस समय तक बिलकुल वृद्ध हो गए थे। सारिपुत्र इसी घटना के बाद अपने परिनिर्वाण के लिए पावा से अन्तिम विदा लेकर नामक घाम गये, जहाँ सात दिन बाद वे स्वर्गस्थ भी हो गये। इसी के एकाध वर्ष बाद ही बुद्ध का भी परिनिर्वाण हो गया।

(iii) मज्झिमनिकाय के सामगममुत्तम में आनन्द के माध्यम से यही घटना बुद्ध तक पहुँचाई गई। आनन्द ने यह भी कहा कि भगवान बुद्ध ३३ घटना को मुनकर बहुत प्रसन्न होये—‘एतमथ भगवनो आदीनेस्साम’। धेरीगाथा (१६०) के अनुसार आनन्द बुद्ध की प्रव्रज्या के लगभग बीस वर्ष बाद प्रप्रजित हुए। अतः वह घटना निश्चित ही अन्तिम समय की होगी। मुनि नगराज जी ने बुद्ध का परिनिर्वाण ५०२ ई० पू० माना जो इस घटना के आधार पर सम्यक् नहीं टहरता।

इन उद्धरणों से ऐसा लगता है कि महावीर के निर्वाण के बहुत छोटे समय बाद ही बुद्ध का निर्वाण हुआ था। डॉ० जेकोबी ने इन उद्धरणों को मात्र इसलिए असंगत माना है कि उनका उल्लेख परिनिष्वाणसुत्त में नहीं हुआ।^१ परन्तु इसे असंगत या अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि महापरिनिष्वाणसुत्त का उद्देश्य ऐसे प्रसंगों का उल्लेख करना नहीं था। मुनि नगराज जी ने उन्हें अप्रामाणिक अवश्य नहीं माना पर उत्तरकालिक माना है जो ठीक नहीं। उद्धरणों से स्पष्ट आभास होता है कि उक्त घटना के समय बुद्ध और सारिपुत्र बिलकुल वृद्ध हो चुके थे।

जहाँ तक दीपनिकाय (सामज्जकनमुत्त), समुत्तनिवाय (दहरमुत्त) तथा मुत्त-निपाण (समिपमुत्त) के उद्धरणों का प्रश्न है जहाँ बुद्ध को निग्गञ्जातपुत्त आदि तीर्थंकरों की अवेशा दहर और नवप्रप्रजित कहा गया है। (समणो हि मोनमो दहरो धेव आनिमो नवो च पम्भउज्जायाति), वह भी ठीक है। इन प्रकरणों में बुद्ध ने समवतः शिष्टाचारवश अपने को दहर बनाया हो और फिर वह भी असम्भव नहीं कि विनितक ने अपने धर्मनायक की अवश्यवत्क पर बुद्धन ज्ञाना बताने की दृष्टि से ऐसा कह दिया हो।

अन्य मुनी तो अब ऐसा लगता है कि महावीर और बुद्ध के परिनिर्वाण में अन्तर बनना नहीं रहा होगा। विचारभेदी आदि ग्रन्थों के अनुसार महावीर का निर्वाण विजय नवम् के ४३० वर्ष पूर्व हुआ था। वह नवम् विजय के राग्यारोहण में प्रारम्भ होता है जो उनके जन्म के अठारह वर्ष बाद हुआ। अतः महावीर का निर्वाण ३७ + १५ + ४३० = ५४६-४३ ई० पू० माना जाना चाहिए तथा बुद्ध का परिनिर्वाण

१ धम्म, पृ० १३, अंक ६, पृ० १३

२ मनु स्मृतिक का अर्थाना नव है।

निम्न परम्परा द्वारा मान्य २४४—२४३ ई० पु० स्वीकार किया जाना चाहिए। इन प्रकार दोनों महापुरुषों के परिनिर्वाण में एक ही का अन्तर रहा होगा। डॉ० वायना प्रसार पाठक आदि विद्वान की इनो विचार को स्वीकार करने हैं।

जन्म और पारिवारिक निर्वाण

दोनों महापुरुषों का जन्म समान परिस्थिति और वातावरण में हुआ। बुद्ध का जन्म वसिष्ठरत्न में हुआ जो क्षात्र क्षत्रिय का। महावीर वैशाली के कुश्लरपुर में जाने जो विन्दवि क्षत्रिय का। दोनों की कुली में की कोई कट्टन अन्तर नहीं। बुद्ध का जन्म ६२४-६२३ ई० पु० (२४४-२४३-४००) में हुआ और महावीर का जन्म ६००-६०३ ई० (२४९-४१-४०२) में हुआ। जब बुद्ध महावीर से लगभग छ वर्ष छोड़ दे। बुद्ध क्षत्रिय और क्षात्रिय कुल में ही उत्पन्न होते हैं और दोनों कुलों में क्षत्रिय कुल को छोड़कर माने हैं परन्तु महावीर आदि तीर्थंकर को क्षत्रिय के अनिष्टि अन्यत्र उल्लेख ही नहीं होते।

बुद्ध के पिता का नाम सुद्धोदन, माता का नाम महामाया और बुद्ध का नाम सिद्धार्थ था। सुद्धोदन और सिद्धार्थ से दोनों नाम पारवर्तनीय जैन-परम्परा से सम्बद्ध होते चाहिए। सुद्धोदन मूर्धवती और वीणम बोधी थे। पुत्र क्षात्रिय का। वसिष्ठरत्न क्षत्रिय के महाभाग राजा थे। पूर्वज इक्ष्वाकु थे। महावीर के पिता सिद्धार्थ महागजा चेटक के राजा थे। चेटक निष्कादि क्षत्रिय का प्रधान था। इनकी राजधानी वैशाली थी। माता विमला चेटक की ही कहित या सुप्री थी। महावीर की क्षत्रिय क्षात्रि और माय का प्रातृषा के थे। पुरा परिवार पारवर्तनाम-पाण्ड्या का अनुपादी था। महावीर का जन्म-नाम सर्वमान्य था। कोई उन्हें वैशालिक भी कहते थे। पर आगे चलकर उनके नाम बीर, अनिबीर, मग्गवि और महावीर आदि भी प्रचलित हुए। ये सभी नाम विभिन्न चटवर्गों पर आचार्य हैं। पानि निविटक तथा जैनधर्म में उन्हें निम्नजन्मजन्तुल कहकर स्मरण किया गया।

जैनधर्म में तीर्थंकर तथा चोद्धर्मा में बुद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है। महावीर के तीर्थंकरत्व का सम्बन्ध निम्नरूप परम्परा तृतीय पूर्व मर्षों में जोड़ती है तथा स्वनाम्न परम्परा २६ अथवा २७ पूर्वमर्षों का वर्णन करती है। दोनों परम्परों महावीर के प्रमुख पूर्वमर्षों का ही वर्णन करती हैं अतः कोई विवाद का विषय नहीं। बुद्ध का भी बुद्धत्व से सम्बन्ध ऐसे ही पूर्वमर्षों से रहा है। इन संबंध में उनके पाँच ती गतांग अथवा पाँच ती इक्ष्वाकु पूर्वजों का वर्णन मिलता है।

वासुदेव आदि श्रुतियों की शानियों से प्रेरित होकर सुद्धोदन ने वीणम का ध्यान विपरीतमोक्ष की ओर केन्द्रित करने का प्रयत्न किया। दण्डपाणि की सुप्री यक्षोघरा का स्वयंवर हुआ जिसमें वीणम ने १६ वर्ष की अवस्था में देवदत्त आदि माक्ष्य कुमारों को मरमता में पराजित कर उसका पालिष्ठुष विदा। प्रविशोपिता के विषय थे—(१) मज्झिम उत्तरोप, (२) निमिजान, (३) वसित, (४) धनुषधान, (५) धनुषधान,

(१) मन्त्रबुद्ध, (२) सतिपट्ठाण, (३) वाण विमल, (४) शास्त्रज्ञान । यगोपासना गुरु की भाषा भी बनी ।

महावीर भी अगारम प्रेमी थे । माता-पिता ने उनके सम्पत्ति विनाश का प्रस्ताव रखा पर उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया । विश्वेश्वर चण्डिका उनके प्रधान प्रतिवादि मानती है पर इवेण्डर चण्डिका समानुर के महासामन समरवीर की विम पुत्री यगोपा के साथ सम्पत्ति को स्वीकार करती है । कानागर ने महावीर लक्ष पुत्री के पिता भी हुए विमर विनाश सम्पत्ति जमान के साथ हुआ ।

महावीर की विद्या-दीक्षा के सम्बन्ध में कोई विशेष सामग्री नहीं मिलती । मात्र यही मिलता है कि जिनमेन के अनुसार लज्जपल और विजयल नामक मुनियों ने उन्हें देवकर ही अपनी संस्थाएँ दूर कर लीं । बुद्ध की भी विद्या-दीक्षा के विषय में अधिक जानकारी नहीं । सतिपट्ठाण में उनके गुरु का नाम विद्वामिन् बताया गया है । विद्वामिन् ने दस हजार कामकों के साथ बुद्ध को पढ़ाना प्रारम्भ किया । यहाँ हर स्वर और वर्ण के साथ बौद्ध सिद्धांतों का योग किया गया है ।^३

बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के लिए निदान दिया था, पर महावीर ने तीर्थंकर बनने के लिए ऐसा कोई निदान नहीं दिया था, क्योंकि निदान करना जैनधर्म में हेतु माना गया है । इतना अवश्य है कि बुद्धत्व और तीर्थंकरत्व प्राप्ति के निमित्त समान समान दिशाएँ मिलती हैं ।

बुद्धत्व प्राप्ति के लिए पारमिताओं की प्राप्ति को अव्यक्त कारण माना गया है प्राचीनतम पालि साहित्य में पारमिताओं का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता । दीपनिर्वाण के समुत्तरमुत्त व समीनिमुत्त में बौद्ध मन्त्रियों की सूची दी गई है परन्तु उमंगे पारमिताओं का उल्लेख नहीं मिलता । मज्झिमनिकाय में 'पारमिधतो' शब्द अवश्य मिलता है, पर पारमिता के अर्थ में नहीं । अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि पारमिताओं का सिद्धांत मूल रूप से खेरवादी परंपरा में नहीं था । महासिद्धादी और महासायिक परंपराओं में बौद्ध धर्म में थोड़ा जाग्रत करने की दृष्टि से पारमिताओं का आलेखन किया होगा ।^४ इसी का प्रभाव उत्तरकासीन पालि साहित्य पर दृष्टिगोचर होता है । इसी आधार पर जानक कथाओं का निर्माण हुआ है । यहाँ दस पारमिताओं का वर्णन मिलता है—दान, धीम, नेषधम्म, पञ्चा, विरिय, शान्ति, सच्च, अधिद्वान, मेता व उपेक्षा । इन दस पारमिताओं का आधार बौद्ध संस्कृत साहित्य में प्राप्त ३३ पारमिताएँ हैं—दान, धीम, शान्ति, धीम, ध्यान और प्रज्ञा । खेरवादी परंपरा में नेषधम्म,

३ सतिपट्ठाण, पृ० ८६; देगिये, लेगव की पुस्तक—बौद्ध संस्कृति का इतिहास, पृ० १२-१३

४ Aspects of Mahayana Buddhism and its relation to Hinayana, p. 11.

सत्त्व, अधिष्ठान, मेत्ता व उपेक्षता को और ओढ दिया गया है तथा ध्यान पारमिता को छोड़ दिया गया है। दमभूमिब्रूमूत्र में वट्पारमिताओं में उपावसीयत्व, प्रणिधान, वल और ज्ञान को ओढ़कर दम पारमिताएँ भी गई हैं। उपेक्षता व मेत्ता ब्रह्म-विहारों के अन्तर्गत आये हैं तथा सत्त्व को धीस ॥ परिवर्णित किया जा सकता है। अधिष्ठान को प्रणिधान में शामिल कर सकते हैं। नैकम्मपारमिता (गुह्यत्व) पर वेरवादियों ने विशेष ध्यान दिया जबकि महायानी परम्परा उस पर अधिक ध्यान नहीं दे सकी। महायोगियों और सर्वार्थिवादियों ने उसे पृथक् माना।

जैन साहित्य की दिगम्बर परम्परा में तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध के निमित्त सोलह भावनाओं का वर्णन मिलता है जिनका परिपालन करने से साधक तीर्थंकर बन सकता है—१. दर्शनविमुक्ति, २. विनयसम्पन्नता, ३. धीस और वलों में अनतिचार ४. आसीदण ज्ञानोपयोग, ५. सत्त्व, ६. वषा शक्ति त्याग, ७. तप, ८. तापु-समाधि, ९. संघावृत्ति, १०. अहंर मक्ति, ११. आचार्यमक्ति, १२. बहुभुज मक्ति, १३. प्रवचन मक्ति, १४. आवश्यक अपरिहासित्य, १५. मार्ग प्रभावना, और १६. प्रवचन वात्सल्य।^५ नायायम्मतहाओ में कुछ परिवर्तन के साथ निष्ठवरमसता, स्थविरवरसता, तपस्वी वरमसता तथा लघुवैज्ञानग्रहण इन चार भावनाओं को और ओढ दिया गया है।^६

बौद्ध साहित्य में महापुरुष के प्रायः बत्तीस धारीरिक लक्षण बताये गये हैं। अर्धदिनचयमूत्र में प्रत्येक लक्षण प्राप्ति के लिए पृथक् कर्म विपाक दिया गया है। परन्तु दीपनिचाय में इन कर्मविपाकों की कुल संख्या बीस ही बताई गई है—१. सदाचार, २. प्रियकारिता, ३. जीवहिता त्याग, ४. मधुर भोजनदान, ५. जनसमाह्वयता, ६. अर्थवर्णोपदेशदान, ७. सत्कारपूर्वक मिलनहित की जिज्ञासा, ८. अन्नोष, ९. वस्त्रदान, १०. परस्पर मैत्री करना-कराना, ११. योग्यायोग्य पुरुष का ध्यान, १२. परहिताकांक्षा, १३. परपीडात्याग, १४. प्रियहृष्टि, १५. सत्कार्य में अग्रणी, १६. सत्यवादिता, १७. सचर्य दूर करना, १८. मधुरभाषिता, १९. भावपूर्णवचन, और २०. सम्यक् आजीविका। इन कर्म विपाकों, पारमिताओं तथा तीर्थंकर प्रकृतियों की तुलना करने पर बहुत कुछ समानता दिखाई देती है।

जैन परम्परा में तीर्थंकरों के १००८ लक्षण बताये गये हैं। भगवान महावीर के भी उतने ही लक्षण थे। विस्तार में हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं।^७

महाभिनियमण और कवत्त्य-साधना

महावीर ने तीस वर्ष की अवस्था में महाभिनियमण किया अर्थात् ५८८-

५. उत्तरार्थ मूत्र, ६, २४

६. नायायम्मतहाओ ८, ७०

७. देखिये लेखक का लेख—तीर्थंकरत्व व बुद्धत्व प्राप्ति के निमित्तों का तुलनात्मक अध्ययन।

५८७ ई. पू. में उन्होंने गृहत्याग किया और ५७६-७५ ई. पू. में बारह वर्ष १३ पदा बाद केवलज्ञान प्राप्त किया।^८ बुद्ध का महाभिनियम २६ वर्ष की अवस्था में ५६५-५६४ ई. पू. (६२४-६२३—२६) में हुआ अर्थात् महावीर से लगभग गान वर्ष पूर्व बुद्ध ने गृहत्याग किया। परन्तु महावीर और बुद्ध के परमज्ञान की प्राप्ति तक यह अन्तराल १३ वर्ष का हो गया। दोनों महापुरुषों ने अपनी साधना का प्रारम्भ पाश्वर्नाथ परम्परा में दीक्षित होकर किया।

महावीर के वर्षावास और विहारस्थल

छायाग मूल में महापद्मचरित्र के प्रसंग में महावीर के विषय में लिखा है कि गीने तीस वर्ष गृहस्थावस्था में, बारह वर्ष १३ पदा केवलज्ञान-प्राप्ति में और तेरह पदा कम तीस वर्ष घने-प्रचार में बिताये।^९ इसके अनुसार महावीर ने ४२ वर्ष निम्न स्थलों में बिताये।

चौबिध-साधनाकालीन वर्षावास*

१. कुण्डग्राम, कमरिग्राम, मोराक सन्निवेश, ज्ञातगण्डवन, बोस्लाग-सन्निवेश, दूहज्जतग, अरिथकग्राम (वर्षावास)।
२. मोराक, दक्षिण-उत्तर बाघाल, गुरमिपुर, दवेताम्बी, राजगृह, नालन्दा (वर्षावास)।
३. बोस्लाग, ब्राह्मणग्राम, मुवर्णमल, चण्डा (वर्षावास)
४. बालाघ, कुमारक, पत्त, बोलाक, पृष्ठचम्पा (वर्षावास)

८ वर्तमान में स्थापित माय्यता के अनुसार महावीर एवं बुद्ध के जीवन की प्रमुख निम्नियाँ इस प्रकार हैं—

घटनाएँ	महावीर	बुद्ध
जन्म	५६६ ई० पू०	५८२ ई० पू०
गृहत्याग	५६६ ई० पू०	५५४ ई० पू०
चौबिध	५५७ ई० पू०	५८७ ई० पू०
निर्वाण	५२७ ई० पू०	५०२ ई० पू०

—आयम और निर्गिटक : एक अनुशीलन (मुनि नगराज जी) पृ० ११७

९ छायागमूल, टाणा २, उद्देश ३, मूल ६६३ की वृत्ति, पृ० ५६१।१; पद्यता में महावीर का केवलज्ञान २६ वर्ष ५ माह २० दिन लिखा है।

* देखिये, आयम और निर्गिटक : एक अनुशीलन पृ० ३६४-४००।

७. बद्धमा, आचर्या, बलवन्धुवा, पूर्णवज्रा, आचरणी, मयवा, राहदेग, घनप, भरिवा (वर्षावास)
८. कयली, लंकाय, बैलानी, अम्बुमण्ड, बुनिय, घामाच भरिवा (वर्षावास)
९. मगप, आर्ममिया (वर्षावास)
१०. बुध्दाय, बट्टमानव, मोहानमा, मोहुमि, मरंय, दामवन, बुमिनाम, उधाय, रात्रगृह (वर्षावास) ।
११. मार, गुह्मभूमि, बयभूमि (वर्षावास)
१२. निद्धार्चपुर, नूमेदाम, बैलानी, वाणिज्यधाम, आचरणी, (वर्षावास)
१३. मानुषद्विप, लोमवि, निद्धार्चपुर आर्ममिया, आचरणी, आगलनी, विविना, मनप, कोलाबी, रात्रगृह, बैलानी, (वर्षावास)
१४. मृगमारपुर, मन्दिधाम, कोलाबी, मेडिधधाम, मृगवन, चप्पा (वर्षावास)
१५. अविधधाम, मेडिध, दम्मावि

चैत्यवासवाकालीन वर्षावास

१६. ज्जुशामुवा, वावागुरी, रात्रगृह (वर्षावास)
१७. रात्रगृह, काण्णपुच्छ, बैलानी (वर्षावास)
१८. बैलानी, कोलाबी, आचरणी, वाणिज्यधाम (वर्षावास)
१९. वाणिज्यधाम, रात्रगृह (वर्षावास)
२०. रात्रगृह, चप्पा, कोणमय, वाणिज्यधाम (वर्षावास)
२१. वाणिज्यधाम, आगलनी, आर्ममिया, रात्रगृह (वर्षावास)
२२. रात्रगृह (वर्षावास)
२३. रात्रगृह, आर्ममिया, कोलाबी, बैलानी (वर्षावास)
२४. बैलानी, विविना, वाचन्दी, वाणिज्यपुर, पोत्तानपुर, वाणिज्यधाम, बैलानी (वर्षावास)
२५. बैलानी, रात्रगृह (वर्षावास)
२६. रात्रगृह, वृद्धववा, आचरणी, वाणिज्यधाम (वर्षावास)
२७. वाणिज्यधाम, काण्णपुच्छ, कोलाबी, रात्रगृह, (वर्षावास)
२८. रात्रगृह, चप्पा, रात्रगृह (वर्षावास)
२९. रात्रगृह, वाचन्दी, विविना, चप्पा (वर्षावास)
३०. चप्पा, आचरणी, मेडिधधाम, चप्पा, विविना (वर्षावास)
३१. विविना, हरितनापुर, मोका, वाणिज्यधाम (वर्षावास)
३२. वाणिज्यधाम, रात्रगृह (वर्षावास)
३३. रात्रगृह, वृष्टचप्पा, चप्पा, दणार्चपुर, वाणिज्यधाम (वर्षावास)
३४. वाणिज्यधाम, वाणिज्यपुर, बैलानी (वर्षावास)
३५. बैलानी, वाणिज्यधाम, बैलानी (वर्षावास)

३३. वैशाखी, राजगृह, अम्बा, गुण्डमम्बा, राजगृह (वर्षावास)
३४. राजगृह, नागम्बा (वर्षावास)
३५. नागम्बा, वागिग्यग्राम, वैशाखी (वर्षावास)
३६. वैशाखी, माकेन, वैशाखी (वर्षावास)
३७. वैशाखी, राजगृह (वर्षावास)
३८. राजगृह, नागम्बा (वर्षावास)
३९. नागम्बा, मिथिला (वर्षावास)
४०. मिथिला (वर्षावास)
४१. मिथिला, राजगृह (वर्षावास)
४२. राजगृह, अवापापुरी-यावा (निर्वास) (वर्षावास)

महात्मा बुद्ध के वर्षावास और विहारस्थान

महात्मा बुद्ध ने भगवन् १२ वर्ष के बाद बोधि प्राप्त की। इस बीच वे कपिल-वस्तु, राजगृह आदि घूमते हुए उद्देश्य पट्टेचे जहाँ उन्हें बोधि प्राप्त हुई। इनके बाद उन्होंने वर्षावास गुरीया प्रारम्भ किये।

१. वाराणसी, अविषत्तन (वर्षावास)
२. गया, राजगृह (वर्षावास)
३. राजगृह, वैशाखी, आवरती, राजगृह (वर्षावास)
४. कपिलवस्तु, वैशाखी, आवरती, राजगृह (वर्षावास)
५. वैशाखी, आवरती, कपिलवस्तु, वैशाखी (वर्षावास)
६. राजगृह, भद्रमपर्वत (वर्षावास)
७. राजगृह, आवरती, त्रयस्त्रिंश (वर्षावास)
८. आवरती, राजगृह, वैशाखी, गुग्गुमारगिरि-चुनार (वर्षावास)
९. कोशाम्बी (वर्षावास)
१०. पारिलेयक (वर्षावास)
११. आवरती, नासा-नालम्बा (वर्षावास)
१२. कुह-कलमावदम्भ, मयुरा, वेरजा (वर्षावास)
१३. प्रयाग, काशी, वैशाखी, पालियपर्वत (वर्षावास)
१४. वैशाखी, आवरती, साकेत, भाषण, आवरती (वर्षावास)
१५. कुसीनारा, कोसल, कपिलवस्तु, राजगृह, अम्बा, कपिलवस्तु (वर्षावास)
१६. मालधी-कानपुर (वर्षावास)
१७. कोशाम्बी, राजगृह (वर्षावास)
- १८-१९. पालिय पर्वत
२०. वैशाखी, राजगृह, आवरती (वर्षावास)।
- २१-४५. वर्षावास आवरती में रहे। इस बीच बुद्ध कोशल, कुह, राजगृह,

नासदा, सामयाम, पावा, वैशाखी, कुसीनादा आदि स्थानों पर विहार करते रहे ।

४६. राजगृह, वैशाखी, पावा, वैशाखी (वर्षावास) कुसीनादा (निर्वाण) ।

दोनों महापुरुषों का व्यक्तिगत सम्पर्क

भगवान महावीर और महारामा बुद्ध के वर्षावासों और विहार-स्थलों पर दृष्टिगत करने से यह स्पष्ट है कि दोनों महापुरुषों की विहारभूमि अनेक बार एक ही घास और नगर रही होगी । यावरणी, राजगृह, मालदा, वीशाम्बी आदि कुछ ऐसे ही नगर हैं जहाँ दोनों ने अपने धर्म का पर्वाण प्रचार-प्रसार किया । यदि महावीर का परिनिर्वाण ५२७ ई. पू. और बुद्ध का परिनिर्वाण ४८३ ई. पू. मानकर चला जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि महावीर ने निर्वाण हो जाने पर महारामा बुद्ध ने धर्म का प्रवर्तन किया । परन्तु यह विचार सही प्रतीत नहीं होता । उनका निर्वाण ५०२ ई. पू. में भी नहीं माना जा सकता । सूत्रकृतांग में महावीर के १६वें वर्षावास के समय राजगृह में आश्रंभुमार का भोद मिथु के साथ सास्त्रार्थ होने की घटना का उल्लेख आया है ।^{१०} बुद्ध का २२ वाँ वर्षावास भी राजगृह में हुआ । इसी प्रकार और भी अनेक प्रसंग हैं । यहाँ इस समय बुद्ध का वर्षावास नहीं होगा, बल्कि बुद्ध के कुछ शिष्यों का होगा क्योंकि बुद्ध का वर्षावास इन समय ३२वाँ वर्षावास रहा होगा जो यावरणी में हुआ था ।

महापद्मि राहुल जी ने बुद्धजयों की कालक्रम की दृष्टि से समीचे का प्रयत्न किया है । तदनुसार धर्मचक्रप्रवर्तन के समय ही बुद्ध की जेंट आजीवक सम्प्रदाय के मिथु से हुई । हम जानते हैं, आजीवक सम्प्रदाय का संस्थापक भगवन्ति गोपालक महावीर के साथ सायनाकाम के १०वें वर्षावास तक रहा । हमारी भाष्यना के अनुसार महावीर ने लगभग सात वर्ष बाद गृहत्याग किया जबकि इस समय सब बुद्ध बोधि प्राप्त कर चुके थे । जैन भागमों ने उल्लेखों से स्पष्ट है कि गोपालक का महावीर से परिचय उनकी मायना के द्वितीय वर्ष में हुआ इसलिए यह जेंट गोपालक से ही रही होगी परन्तु आजीवक सम्प्रदाय का उन्मुख नहीं नहीं लगता क्योंकि इस समय तक उसकी स्थापना ही नहीं हुई थी ।

बुद्ध जब मकुन पर्वत पर वर्षावास कर रहे थे, उस समय राजगृह के एक श्रेष्ठी ने चन्दन पात्र को लीने पर बाध रखा और उसे दिव्य शक्ति द्वारा उठाने को तीर्थंकरों से कहा । परन्तु अजित वेदाकम्बलो, पबुधकच्चायन, सप्रथवेलद्विपुत्र, निगण्ड-नातपुत्र व भगवन्ति गोपालक ये सभी तीर्थंकर असफल हुए । परन्तु बुद्ध के शिष्य पिडोल भारद्वाज ने उस वर्तन को सरलतापूर्वक उठा लिया । यह भुनकर बुद्ध ने अपने शिष्यों को प्रतिहार्य न करने के लिए सिद्धापद दिया । बाद में बिम्बसार ने बुद्ध से प्रतिहार्य

करने के लिए कहा क्योंकि उक्त सभी तीर्थिक उन्हें चेलेंज दे रहे थे। यह जानकर बुद्ध ने चार माह बाद प्रतिहार्य करने को कहा। तीर्थिक बुद्ध के पीछे-पीछे पड़े। उनके साथ वे राजगृह और आवस्ती भी पहुँचे। बुद्ध ने अपना प्रतिहार्य प्रमेनजिन के समक्ष किया। फलस्वरूप आम की गुठली ने अचानक एक बड़े वृद्ध का रूप ले लिया। तीर्थिक कोई प्रतिहार्य नहीं कर सके। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि निगण्टु सज्जने हुए भाग गये। शक ने बुद्ध की सहायता की। यह ध्यान देने की बात है कि यहाँ निगण्टुनातपुत्त के स्थान पर निगण्टु (जैन माधु) का उल्लेख है।^{११} यहाँ निगण्टुनातपुत्त के सर्वज्ञत्व पर भी छिटा-नक्षी की गई है।^{१२} इस घटना से लगता है, बुद्ध और महावीर ने राजगृह और आवस्ती में एक साथ ही वर्षावास बिताया। फिर भी वे एक-दूसरे के समक्ष स्पष्ट रूप में नहीं आये।

नालगदा में भी बुद्ध और महावीर दोनों ने एक साथ वर्षावास किया।^{१३} समुत्तनिकाय में कहा गया है कि महावीर ने श्रमण गौतम बुद्ध से शास्त्रार्थ करने के लिए अपने प्रधान शिष्य अमिषण्यकपुत्त ग्रामणी को भेजा था और उसमें यह प्रश्न करने को कहा था कि तत्काल जहाँ बुद्धों की उप्रति और रक्षा की बात करते हैं तो ईतिपूर्वक व मूले प्रदेश में क्यों विहार करते हैं? बुद्ध के इस प्रश्न के उत्तर से प्रभावित होकर ग्रामणी उनका अनुयायी हो गया। इसी समय बुद्ध ने ग्रामणी से प्रश्न किया कि निगण्टुनातपुत्त अपने श्रावकों को कौन-सा धर्मोपदेश करते हैं? ग्रामणी ने उत्तर में कहा कि हिंसा, असत्य, म्लेय, कुशील आदि कुकृत्य करने वाला दुर्मेति पाता है। इस लिए व्यक्ति को इन पापों में बचना चाहिए। इसी उत्तर-प्रत्युत्तर से प्रभावित होकर ग्रामणी बुद्ध का शिष्य हो गया। इस घटना से भी यही लगता है कि बुद्ध और महावीर दोनों ने वही एक-दूसरे से मिलने का प्रयत्न नहीं किया बल्कि वे अपने शिष्यों की ही शास्त्रार्थ के लिए भेजते रहे। बुद्ध का एक ही वर्षावास नालगदा में हुआ। राहुल जी ने उगे ११वाँ बनाया परन्तु वह १५वाँ होना चाहिए क्योंकि महावीर ने १५वाँ वर्षावास नालगदा में किया।

इसी प्रकार की एक घटना वैशाली में हुई। यहाँ भी दोनों महापुरुष उस समय वैशाली में ठहरे हुए थे। सीह ने निगण्टुनातपुत्त से बुद्ध के दर्शन करने को जाने की अनुमति माँगी जिसे निगण्टुनातपुत्त ने अस्वीकार कर दिया यह कहकर कि क्रियावादी होते हुए अक्रियावादी के पास क्यों आने हो? उत्तर में बुद्ध ने अपने श्रावकों क्रियावादी और अक्रियावादी दोनों बनाया।^{१४} सूत्रहर्ताग^{१५} में भी बौद्धधर्म को

११ अनुत्तनिकाय ३; धम्मपद अट्ठकथा ४, २

१२ समुत्तनिकाय ३ १.१

१३ कट्टी ४० १ ६

१४ अनुत्तनिकाय, ८. १. २२

- १५ सूत्रहर्ताग, १. २ ६—ने चार्वाक औदार्योऽक्रियावादिन एवमावस्यते, पृ० २१८

ब्रह्मिणावाद में सम्मिलित किया गया है। बाद में अगुत्तरनिकाय में भी लिखा है कि सीह बुद्ध का सिध्य हो गया है फिर भी बुद्ध ने सीह को कहा कि विरकास से तुम्हारा पुत्र निगण्ठों के लिए रहा है इसलिए उन्हें दान देना बन्द नहीं करना चाहिए। वहीं यह भी लिखा है कि सीह ने बुद्ध को मांस मिलाया जिसकी धीरे निगदा निगण्ठों ने की।

अमरगदससाओ (पृ. ६) में श्रेणिक के उन पुत्रों और रानियों के नाम दिये हैं जिन्होंने भगवान महावीर से प्रजया ली थी। पुत्रों में ज्ञाति, मयायी, उवकाणि, पुरयमेन, मारियेण, दीपदन्त, मध्दन्त, वेहम्म, मेहास, अमय, दीपसेन, गूडन्त, मुद्ध कल, हल्ल, दुय, दुयमेन, महादुयसेन, सिंह, सिंहसेन, महासिंहसेन और पूर्णसेन^{१६} के नाम मिलते हैं। पानि विपिटक में निगण्ठनायपुत्र के सिध्यों में सीह, दीपनल, उपानि और लव का नाम आता है। सम्भव है, ये श्रेणिक के ही पुत्र हों।

मेग्गक नामक बृहस्पति भी जैन था, जो बाद में बुद्ध का अनुयायी हो गया, ऐसा पिटक में कहा गया है।^{१७} यह लक्ष्य देस के महुया नगर का रहने वाला श्रेष्ठ था। विविमार राजा के पाँच अमृत भोग सम्पन्न श्रेष्ठ थे—बोतिय, अटिल, मेडक, पुण्णक और काकबन्धीय।^{१८} इसी के पुत्र चन्द्रय श्रेष्ठ की अवमहिषी सुपनादेवी के गर्भ से ही विशाला का जन्म हुआ था। बाल्योत्तर में इसका सम्बन्ध धावस्ती के मृगार श्रेष्ठ के पुत्र पुण्ड्रवर्धन से हुआ। मृगार निगण्ठों का पूजक था और विशाला बुद्ध में अधिक भक्ति रखती थी। मृगार ने निगण्ठों की बुलावा परतु विशाला ने उनकी बड़ी आलोचना की—नग्नत्व की दृष्टि से। फलस्वरूप मृगार भी बीढ़ हो गया।^{१९} यही निगण्ठनायपुत्र का नाम नहीं, निगण्ठों का नाम है। फिर भी यह सत्य है कि भगवान और धावस्ती में जैन-बौद्ध समान रूप से रहते थे।

साक्य देस में भी जैन और बौद्ध दोनों धर्म लोकप्रिय थे। मग्गिम निकाय में एक उद्धरण है कि साक्य देसीय देवदह नाम में महारत्ना बुद्ध भिक्षुओं में कहते हैं कि निगण्ठों का सिद्धांत है कि व्यक्ति जो सुख, दुःख या अदुःख, अनुत्त अनुभव करता है वह सब उसके पूर्वकृत कर्मों के हेतु से। इन पूर्वकृत कर्मों का सपस्या द्वारा अन्त करने से और नवीन कर्मों का आसक्त्यार बन्द हो जाने से मरिष्य में व्यक्ति परिणामरहित (अनासक्ती) हो जाता है। परिणामरहित होने से कर्मसय, कर्मसय से दुःखसय, दुःखसय से वेदनासय, वेदनासय से सभी दुःख जीवों हो जाते हैं।^{२०} इस सिद्धांत की यही

१६ तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० २३

१७ महावग्ग ६२

१८ अमरगद अट्टकथा, ४.८

१९ अगुत्तरनिकाय, अ० कथा, १.७२

२० मग्गिमनिकाय ३.१-१

अनर्गल आलोचना की गई है। राजगुरु ने भी बुद्ध ने निगण्ठों के इन गिद्धांग को उन्नीसो से गुना या और उसका अनुपोदन भी दिया था। वहीं निगण्ठनातपुत्र के सर्वज्ञत्व की भी बहुत आलोचना महात्मा बुद्ध ने की है।^{२१} जानकर ने भी मन्दक परिव्राजक ने कोणास्वी में निगण्ठनातपुत्र के सर्वज्ञत्व की तीव्र आलोचना की और उसे आध्यात्मिक (मन को समुत्पन्न करने वाला) बताया।^{२२}

महात्मा बुद्ध का १७वाँ वर्षावसान राजगृह में हुआ था।^{२३} उस समय विभिन्न महावाक्यियों में यह जानकर हुए व्यक्त दिया कि इन बार अग, मगधो की आध्यात्मिक साम मित्तने का स्वर्ण अवसर है जो कि राजगुरु में पूर्ण काग्यन, महापति मोक्षानक अत्रिण वेदवन्धनी, पशुध बज्जायन, राजय वेमट्ठिपुत्र और निगण्ठनातपुत्र वर्षावसान के लिए आए हुए हैं। भगवान महावीर का बोधा (१७-१३-६) वर्षावसान राजगृह में हुआ। यह जैनागमों में भी ज्ञा होता है।

वन्धना में भी भगवान बुद्ध ने सभी गीर्धकर की नग्नता की आलोचना की मज्झिम महिन सुद्धाति से। आलोचना सभी की जाती है जब उस गिद्धांग का प्रचार अधिक हो जाता है। हम जानते हैं कि वन्धना महावीर की मुख्य विहार-भूमि रही है।

जानक में महात्मा बुद्ध का जब १२ वाँ वर्षावसान हो रहा था, उस समय निगण्ठनातपुत्र भी वहाँ अपनी बड़ी पत्नि के साथ ठहरे हुए थे। तब दीर्घतपस्वी निर्घन्ध बुद्ध के पास पहुँचा। बुद्ध ने पूछा—निगण्ठनातपुत्र पापकर्म के लिए कितने कर्मों का विधान करते हैं। तपस्वी ने उत्तर दिया—कर्म बर्मे नहीं, दण्ड दण्ड विधान करना निगण्ठनातपुत्र का नियम है। ये दण्ड तीन प्रकार के हैं, कायदण्ड, वचनदण्ड और मनोदण्ड। इनमें कायदण्ड महादोग्धुक्त है। उपालि सुद्धपति भी महावीर का भक्त था। गीतम के साथ वाद-विवाद करने के लिए महावीर ने उपाति को भेजा। अन्त में कहा गया कि उपालि और दीर्घतपस्वी दोनों बुद्ध के अनुयायी हो गये। यह जानकर महावीर उपालि के पास गये और उससे पूछा—तुम किसके शिष्य हो? उत्तर में उपालि ने बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर सकेत किया। इसके आगे तो वहाँ तक बताया गया है कि बुद्ध का सत्कार असह्य हो जाने पर महावीर ने मुँह से उष्ण रक्त उमल दिया।^{२४}

इसके बाद दोनों महापुरुषों का विहार राजगृह की ओर हुआ। राजगृह में निगण्ठनातपुत्र ने समय राजकुमार को गीतम के पास विवाद करने भेजा और कहा कि गीतम से पूछो—क्या मन्ते तथागत ऐसे वचन श्रोत सकते हैं जो दूसरों को अप्रिय अमनाप हो? यदि 'हाँ' कहे तो प्रतिप्रश्न करना कि पृथक्जन (साधारण

२१ वही, १२.४

२२ भुल्लवग, ६ भुल्लवगुलदायीमुत्त (राजगृह) में भी समुत्त उदायी परिव्राजक ने निगण्ठनातपुत्र के सर्वज्ञत्व की आलोचना की।

२३ मज्झिम निकाय, २.२.६

२४ मज्झिम निकाय, २.२.६

संगारी जीव) और लयावन में क्या भेद हुआ ? और यदि उत्तर निषेधात्मक रहे तो कहना, आगे देवदत्त के लिए अवश्य बाकी बचों की है कि देवदत्त आनायिक है, देवदत्त नैतिक है, देवदत्त कल्याण है, देवदत्त अविहित है । आपने इस बचन से देवदत्त को अलग हो लिया । जीवन में इस प्रश्न का उत्तर दिया कि यह एकान्तिक (बिना अपवाद के) दृष्टि से नहीं कहा जा सकता । अन्त में अन्त बुद्ध का दृष्टि बन गया ।^{२५}

राजगृह में ही घटित एक और घटना है । अज्ञानगुरु ने लयावीन सभी तीर्थङ्गों के सामग्र्यप्रदान (धामभ्यक्षन) पूछा । निगच्छानागुरु ने उत्तर में आनुपमि सबर बनाया ।^{२६} यहाँ जानिये कि आनुपमि सबर निगच्छानागुरु का नहीं था, पार्श्वनाथ का था ।

राजगृह धावस्ती आदि नगरों में घटित घटनाओं से लगता है, महावीर और बुद्ध दोनों के दृष्टि परस्पर मिलते-जुलते थे और वादविवाद भी करते थे । सम्भव है, दोनों महापुरुषों का यहाँ व्यक्तिगत सम्पर्क भी हुआ हो, जैसा कि हम पीछे देग चुके हैं । गुरुद्वारा के अनुसार आर्द्धक कुमार (महावीर का परम शिष्य) ने दावपुत्रों से वादविवाद किया और उन्हें पराजित किया । अन्त राजकुमार, धामजी आदि के भी इन सम्पर्क में उत्प्रेम पीछे हो चुके हैं ।

समान व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखने वाले राज-परिचार

भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध में समान रूप से व्यक्तिगत सम्पर्क बनाये रखने वाले अनेक राजा थे । उन समय की प्रजा भी धर्म सहितगु हुआ करती थी । राजाओं में जैनिक, बौद्धिक (अज्ञानगुरु), वैश्य, क्षत्र-प्रद्योत, प्रोत्थित, अन्तमकुमार आदि ऐसे थे जिन्होंने महावीर और बुद्ध दोनों से समान रूप से सम्पर्क बनाये रखा । यही कारण है कि दोनों जैन और बौद्ध साहित्य उन्हें अपना-अपना बताते हैं । महावीर और बुद्ध के व्यक्तिगत सम्पर्क बनने और विघटने में इन राजाओं की भी पर्याप्त भूमिका रही है । विस्तार के लक्ष्य से इस प्रश्न को यहाँ उपस्थित करना उचित नहीं होगा ।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध दोनों महापुरुषों के बीच श्रवण-अश्रवण रूप से कुछ समान घटनाएँ हुई हैं और दोनों महापुरुषों का किसी भीमा तक व्यक्तिगत सम्पर्क भी बना रहा है । यद्यपि जैन भावनों में एतद्विषयक सामग्री अत्यन्त न के बराबर है, परन्तु पाणि त्रिपिटक में जैसा भी निगच्छानागुरु के सम्पर्क में मिलता है उसे हम पूर्णतः अस्वीकार नहीं कर सकते, भले ही वह पश्चात्तुर्पण रहा हो । इन घटनाओं का सही मूल्यांकन तभी हो सकता है जब हम बुद्ध को महावीर से अपेक्ष मानें और महावीर का परिनिर्वाण ५४६-४५ ई० पू० तथा बुद्ध का परिनिर्वाण ४८४-४८ ई० पू० स्वीकार कर लें । □

महावीर : बापू के मूल प्रेरणा-स्रोत

१. पारिवारिक पृष्ठभूमि : धर्मसहिष्णुता
२. रायचन्द भाई : एक आध्यात्मिक गुरु
३. अपरिपक्वता
४. सर्वधर्मसमभाव
५. धर्म की व्याख्या
६. बापू के सत्ताधीन प्रेम
७. समाधि भजन से अपरिच

अहिंसा का प्रयोग

कथं

महावीर : बापू के मूल प्रेरणा-स्रोत

इसका महावीर और बापू अपने-अपने ढंग से व्यक्तिगत महानुभव हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम के अर्थोदय, राष्ट्र-निर्माण, समाज-सुधार, आध्यात्मिक और भौतिक शिक्षा का जो ऐसा प्रणाली विकसित किया जिससे समाज का अधिकतम उत्थान हो सके। स्वतन्त्र १९४७ वर्ष पूर्व स्वतन्त्र महावीर का जन्म हुआ था। तबका सामाजिक दृष्टिकोण और विचारों में उन्नति थी। आज भी उनके अनुयायी-जैन इनके जन्म के १५० वर्षों बाद भी उनके जीवन की अविनाशिकता को महसूस कर रहे हैं। विशेषतः दुष्काल की पराजय अनुभवों का अनुभव है ही जैन शिक्षा और महावीर के अन्तर्गत रही है। बापू की भी अनुभूति इन्हीं का है जो आध्यात्मिक शिक्षा है। स्वयं जैन शिक्षाओं के बापू का अन्तर्निहित होता अनुभव-वैशेषिक रही है।

आध्यात्मिक अनुभूति और अहिंसक

महावीर बापू का जन्म परिवार जैन-समाज का अनुयायी का परम्परागत रूप से जैन समाज के आचार-विचार का भी प्रभाव कम नहीं था। महावीर की अहिंसक शिक्षा का जन्म बापू को अपने आध्यात्मिक अनुभवों से मिला। उनके आचार-विचार जैन-अहिंसक आचार, अहिंसक आचार और राज-अहिंसक भी थे। इनके अहिंसक जीवन-दर्शन के आधारों और शिक्षाओं की भी उनके परिवार में अहिंसक आचार-विचार मिला। वे स्वयं भी थे, उनके आध्यात्मिक अनुभवों की भी रही। जैन शिक्षाओं के जन्म पर उनके शिक्षा देकर अहिंसक का है अन्तर्निहित विचार मिला था। जिस, देखा-सोचा की बापू के परिवार के जन्म अनुभवों की है। उनकी अनुभव-महानुभव के विचार आचार को ही अनुभवों का है आज में भी निराला मिला था।

राजसम्राट् और एक आध्यात्मिक गुरु

बापू की अनुभव-वैशेषिकता की ही जैन अनुभूति का परिणाम मिला है। इसलिए उनके अहिंसक विचारों के जैन आचार-विचार का प्रभाव अनुभव-अनुभव का है देखा जा सकता है। उन पर जैन अनुभूति के प्रभाव का उल्लेख है। यह भी है कि विशेष रूप से दिया जा सकता है। बापू ने स्वयं अपने जीवन में अहिंसक प्रभाव जैन अनुभवों की देखा

माई । टानस्टाय ने अपनी पुस्तक द्वारा और उनके साग बोहे पत्र-व्यवहार से, रॉकिन ने अपनी एक ही पुस्तक 'अटल डिग साइट' से ज़िगरा गुजराती अनुवाद में 'गर्बोऽय' रना और रायचन्द माई ने अपने गाढ़ परिचय में । इनमें रायचन्द माई को मैं प्रथम स्थान देता हूँ ।"

यह बात किसी से छिपी नहीं कि सागावषा-नी कवि रायचन्द स्वयं जैन थे और जैनधर्म के एक प्रयुक्त विचारक भी थे । आत्मव्या में बापू ने उनके विषय में लिखा है—“उनका (रायचन्द का) पश्मीर शास्त्रज्ञान, शुद्ध चारित्र्य और आत्मदत्त की उत्कट लगन का प्रभाव मुझ पर पड़ा । उस समय यद्यपि मुझे धर्मचर्चा में अधिक रस नहीं मिलता था, पर रायचन्द माई की धर्मचर्चा को मनोयोग से सुनता था, सम्प्रज्ञा था और उसमें दृष्टपूर्वक भाग लेता था । उनके बाद अनेक धर्माचार्यों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे मिला पर जो छान मुझ पर रायचन्द माई ने डाली वह दूसरा कोई नहीं डाल सका । उनके बहुतेरे वचन सीधे और अन्तर में उतर जाते । उनकी बुद्धि और सच्चाई के लिए मेरे मन में आदर था ।”

रायचन्द माई बापू के समयवत्क रहे । वे बापू से लगभग दो वर्ष बड़े थे । उनकी माता जैन और पिता वैष्णव थे । प्रारम्भ में उन्हें वैष्णवी वातावरण मिला परन्तु शीघ्र ही वे जैनधर्म की ओर झुक गये और बाल्यावस्था में ही पूर्ण जैन हो गये । बापू से जैन हो जाने के बाद ही उनका सम्पर्क हुआ होगा । दोनों का यह सम्पर्क सन् १८६१ में हुआ ।

रायचन्द माई पर गांधी जी को बहुत विरबाता था । उन्होंने आत्मकथा में लिखा है—“मैं जानता था कि वे (रायचन्द माई) मुझे आनकूशकर उल्टे रास्ते नहीं तो जावेंगे एव मुझे वहीं बात कहेंगे जिसे वे अपने जी में ठीक समझते होंगे । इस कारण मैं अपनी आध्यात्मिक कठिनाइयों में उनका आश्रय लेता ।”

अफ्रीका में ईसाई सज्जनों ने उन्हें ईसाई धर्म में परिवर्तित करने का यथाशक्त प्रयत्न किया । उसका फल यह हुआ कि गांधीजी को वैदिक धर्म में विचित्रता पैदा हो गई । उसे दूर करने के लिए उन्होंने यही रायचन्द माई से पत्र-व्यवहार किया । उनके उत्तर से बापू को मन्तोष हुआ और यह विश्वास आ गया कि वैदिक धर्म में उन्हें जो भी चाहिए, मिल सकता है । इससे पता चलता है कि बापू के मन में रायचन्द माई के प्रति कितना सम्मान रहा होगा ।

कवि रायचन्द जी के सम्पर्क से बापू को जैन सिद्धांतों के विषय में भी पर्याप्त जानकारी हो गई थी । फलतः उनका आध्यात्मिक मानस जैन सिद्धांतों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा । महावीर द्वारा प्रतिपादित सार्वभौमिक अहिंसा की पृष्ठभूमि में उनके प्रायः सभी आचार-विचार जागरित हुए । रायचन्द माई के उद्बोधन के

परिशिष्ट

ग्रन्थ गत शब्द-सूची

- अकलंक, १४, ६२
 अकम्पित, ५६, ६०
 अक्रियावाद, १२
 अक्रियावादी आचार्य, १४, ६६
 अग्निभूति, ५६, ५८
 अग्निहोमवादी, १८
 अग्रायणी, ५६, ६६
 अज्ञानवाद, १२, १३
 अज्ञानवादी आचार्य, १४, ६६
 अग्नि उपसर्ग, ४५
 अक्षयन्दक, ४२
 अक्षयभ्राता, ५६, ६०
 अक्षय, ७०
 अक्षयक, १७, ८२
 अक्षयवता, ८०
 अज्ञातवास, ६४, ६६, १६७
 अज्ञातवास-मुक्तिक, १०६
 अज्ञित केसकम्बलि, ११, २३
 अज्ञितजय, २६
 अज्ञितनाथ, ६६
 अज्ञीव, १३४
 अदृष्टे पण्णत्ते, ८०
 अकारिवा, १३
 अभुतरोहवाद्यदमाओ, ६४
 अभुवज, ६४, १२१
 अभुवजोमिव, २०
 अचर्वदेव, ३, ६
 अचर्वान्भुज, ३७, ३८
 अचर्म द्रव्य १३५
 अग्नमान द्वीप, ३
 अनतमति, २८
 अन्तगद्दसाओ, ११६, १६५
 अन्तकृत केवसी, ६४
 अन्तराय कर्म, १३६
 अन्धवेत, ६१
 अग्यतीयिका, १८
 अग्य सम्प्रदाय, १७
 अग्नू दित साष्ट, १७२
 अग्ययुक्तिका, १८
 अनार्य देश, ४५
 अनार्य देशाटन, ४६
 अनुयोग, ८०
 अनुयोगद्वार, ७८
 अनुयोग भेद, ६६
 अनेकान्त, ११६
 अनेकान्तवाद, १२३, १४४, १५१, १५२
 १७८
 अपरिग्रह, ११६
 अपरिग्रहीनता, १७३
 अपरिग्रह, ११०
 अपापापुरी (पापापुरी), ६४
 अपमान, २३, ७३
 अपीच, १७२, १७४
 अपय, १०८, १०९
 अपयपुरार, ६३, १११
 अपयदेव, ६०, ६१, ६३, ६४, ६५

अभिप्रेत, ४८	आप्त (सम्प्रदाय), १३२
अभिनेय कला, १०२	आप्तमीमांसा, २७
अभ्युक्ति, २०	आमलय खेडं (मेल), ३३
अरहन्त, २५, ६१	आर्य हयाम, ८१
अरिपापण, १८	आर्य गृहस्तिमूर्ति, ७८
अरुण महात्मनः, १८	आर्य सोमिन, ५६
अस्याहृतनावाद, १६	आमुकर्म, १३८
अविद्वत्, १८	आरम्भक, १७
अस्तिनास्तिप्रवाद, ५६, ६६	आहन्तु, ५
अस्तिवप्राम, ३८, ४१	आहन्ती, ३७
अस्तिवेवत, १८, ७३	आराध कालाम, ११३
अस्तिबन्धकपुत्र ग्रामिणी, ११२	आवश्यक गुण, १३१
असुर, ३	आवश्यक श्रुति, २५, ४२, ४३, ४४, ४५
आर्य देवोदास, ३	४८, १०६, ११५
अरवमित्र, ६०	आवश्यक निर्वृत्ति, २५, ७५
अमिल, ८८	अमराविक्रमेयवाद, ११
अष्टमूलगुण, ८६, १४६	आपादाचार्य, ६०
अष्टादश शेष, १३२	आप्तव, १३६
अष्टादश लिपिमा, १००	इष्टियन एष्टीकवेरी, ६५, ७६, ८१
अहिमा, ८६, ११६, १२०, १२१, १२२,	इष्टमृति मीनम, ५६, ५७, ५८, ६१,
१२३, १२४, १४५, १७२, १७३,	१०६
१७७, १७८	इन्द्रधर्मा, ४१
आकाश, १३६	ईनाम्नेल, ७३
आचार दिनकर, ६६	ईनाकेल, २३
आचारान्, २५, १०, ४०, ४५, ४६, ६५,	ईरान, ७३
८१, ८६, ८७	ईस्वरवाद, १६, १८
आचारान् श्रुति, ८३-८६	उच्छेदवाद, ११
आचारान्गपारी, ७७	उज्जयिनी, ६६, ११५
आजीविक, २०, ८८, ६२	उदयन, १०६
आत्मकथा, १७१, १७२, १७३	उत्तरकुलव, १६
आत्माज्ञेयवाद, १६	उमास्वाति, ७५, १३२
आत्मप्रवाद, ५६, ६६	उत्पल, ४१
आत्मपष्ठवादी, १६	उत्पाद, ५६, ६६
आत्मक, ८६	२६, २८
आनन्द, ६५, ६३, ११०, १६६	

उत्तराध्ययन, २६, ६१, ६६, ८१, १३७,
१४८

उत्कालिक, ११६

उत्तराध्ययन टीका, ११६

उदयगिरि, १०६

उदितोदय, ११०

उपलवेटिया, २०

उपनिषद्, ६६

उपसर्ग, ४१

उपाग, ८०, ६८, ६६

उपाख्यायिकायें, ६३

उपासिकावर्ग, ११३

उपासकवर्ग ११०

उपासि, १११

उवासागदसां, २५, ११०

उट्टियसमग, २०

उड्डक, १६

उदयन, १०७

उदय वेङ्गामपुत्त, ८६

उमगजक, समगजक, निमगजक, १६

उपधामभूग, ८३

उवासागदसा, ६३

एकादशागधारी, ७७

भीरुपानिक, १८, २६

अयधंघ, ६०, ६८

अयवाह्य, ८०, ८१, ८१

अगिरम, १८

अनवद्वन्द्वी, ६४

अगुलानिकाय, ११, ११२, १६४

अदह, १६

अनुमकरी, बाधुमकरी, मेवाणमकरी, १६

अद्वन्द्वी, १६

अद्वैत, १, २, ६

अद्वैतानुमती, १०, ११

अद्वैत, ४

श्रुतमदेव, ६, ७, ७४, १००

श्रुतमदत्त, ३०

निवत्त, ५१

कविल, १६

कटपूतना का उपसर्ग, ४६

कठोर अभिग्रह, ४७

कङ्क, १६

कण्टुदिवायण, १६

कण्टुपरिख्यायण, १६

कर्णसागाका निष्कासन उपसर्ग, ४८

कर्मारग्राम, ३८

कतिपय प्रतिभायें, ४०

कल्पयुधिष्ठिर, २३, ७३

कन्हैयामाल सरावणी, ६६

कमलावती, ११६

करकण्ठ, १६

कर्मप्रवाद पूर्व, ६६

कर्म, १३६

कर्मवर्ग प्रकार, १३७

कर्म के आठ प्रकार, १३७

कल्पसूत्र, २५, ३४, ४०, ४६, ६३, ६४,

६५, ६८, ७६

कल्याणप्रवाद, ५६, ६६

कल्याणविश्वयत्री, ६७

कलिय, ६३

कलाव बाहुक, ८६

कहावनि, २५, ५०

काष्ठवर, ३२

कार्त्तिकेय, ६५

कार्त्तिकेय, १२६

कामाग्रप्रवाद, २०, ६७

कामदेव, ६३

काव्य (काव्य), १२२

काव्य, १३६

काव्यक, १६

कानिह, ८१
 कानिहभूत, १८
 काजीरामद अक्षराम, ४
 काष्टाकार, १०७
 क्रियाशद, १२
 क्रियावादी आचार्य, १४, १९
 क्रियाविज्ञान, २६, ६६
 कुम्हरोलिक, ११
 कुम्हदान, ३०, ३८
 कुम्हदुर, १८
 कुम्हिय, १६
 कुम्हकुम्ह, ७०, १२६, १३६, १४०
 कुवादीमन, ६६
 कुवीनगर, ६६
 कुम्हग्राम, ४६
 कुम्हग्राम, १६
 कुम्हग्राम, ३
 के. पी. जयमल्ल, ६७
 केम्ब्रिज हिन्दी और इतिहास, ६५
 केवलमान, ५०
 केवली, ५०, ७६
 केवलज्ञानोत्पत्ति, ५१
 केचित्तुमार, १०७
 केलाधरप्र शास्त्री, ६७, ७८
 केवल्य, ५०
 केवल्य साधना, १५६
 केचित्तु, १६
 कोन्लाय सप्रियेय, ३२, ३८, ४४
 कोल्हूवा, ३२
 कोल, ३
 कोलावादेवी, १०२
 कोलाम्बी, ३६, ४७, ६३, ११४
 कोरक, ३
 कोसी, ४८
 कोण्टर, ५६, ८०

कलाचार्य, ५०
 कनिविटक, ८०
 कन्धर्ब विद्या, १०६
 कनिहभूत, १८
 कर्माग्रहण, ३०
 कायापनिपुत्र लक्षण, १८
 कापी विचार दोहन, १७७
 कापीवाद की राय परीक्षा, १७८
 जानावरणीय कर्म, १३७
 ज्ञान के प्रकार, १४२
 ज्ञानसम्पन्न, ३८
 ज्ञानवाद, ५६, ६६
 ज्ञानि, ११०
 जैरिक, २०
 जूहियर्मा, १८
 गोमानक, १५, ४६, ६६, ९७, ८६, ६२
 गोमानक, १६, ४८
 गोत्रकर्म १३६
 गोरोहिवा, ५०
 गुणस्थान, १५०
 गुणचन्द्रमूर्ति, २५
 गोत्रदी, १८
 गोत्रिक, १८
 गोष्ठ्यामाहिन, ६०
 गोरीशकर मठ, १७०
 गोत्रम, १८
 गोत्रम मन्थर, ८०
 गोत्रम बुद्ध, २६
 गोत्रर, २६
 गग, ६०
 अक्षय्य महापुरिम परिय, २५
 अक्षय्यीति सप्त, ४२
 अक्षय्ययोग, १०६, १०६, ११५
 अनुविद्यति जिन परिय, २६
 अन्दना, ४७, ६१, ६५, १०६, ११५

चन्द्रगुप्त, ५६, ६६, ७५, ८८
 चम्पा, ५१, १०६
 चमत्कारी विद्या, ६५
 चरक, १८
 चलपर, ३२
 धानुर्ग्राम, ७, ९६, ८६, १६७
 चारित्र्य प्रकार, ६६, ७०
 चार्वाक, १५
 चातुक्य कुमारपाल, ६७
 चित्रकला, १०१
 चीन, ७३, ६३
 चीरिक, १८
 चुन्द, १५५
 चुल्लवाम, १६४
 चुल्लघातक, ६३
 छेदक, १०५, १०६
 छेदक पुत्रिया, १०६
 खेलना, १०७, १०८
 छूलिका भेद, ८०, ६६
 छुलनीपिता, ६३
 चीर्य, १०३
 चौदहपूर्व, ६६-७
 चौधरी गुलाबचन्द, ४
 छद्मस्थकाल, ३८
 छद्मस्थकालीन तपस्या, ४६
 छद्मस्थसाधना, ३७
 छम्मानि, ४८, ५१
 छिद, ८०
 छेदोपस्थापना, ७०
 छेदमूत्र (छेद), ६६
 छेदोपस्थापक, ७०
 ज्योतिष्करशङ्क, ७८
 जमियग्राम, ५०
 जग्म, १५७
 जयारिया, ३२

जयगवमा, ५०
 जल-दीनवादी, १८
 जलणई, १६
 जम्बूद्वीप प्रगति, १०१
 जमुई, ५०
 जरघुस्त, २३, ७३
 जवनिगज, ६२
 जातिवाद, १२१
 जामानि, ३४, ६०
 जिनसेन, ५५, १५८
 जिततनु, ६३
 जिरेमिया, २३, ७३
 जीव (आत्मा), १३३
 जीवघर, ९, ३, १०७
 जीवणसिय, २०
 जूमिकग्राम, ५१
 जूमिकाराज, ५६
 जेकोमी, ७६, १५६
 जोई (योमी), १६
 जैनगम इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, ९, ५०
 जैन, अवधीत चन्द्र, १०२
 जैन आचम साहित्य में भारतीय समाज,
 १०२
 जैन, श्रीमती पुष्पलता, १८१
 जैन साहित्य में विकार, ७६
 जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, ८५, ६२,
 ६६
 जैन साहित्य का इतिहास, ७६
 डास्स्टाय, १७१
 ठाणाम, २५, ३०, ६६, ८६, ६०
 १०१, १६०
 ठणई, १६
 ठारय, १६
 तत्त्वार्थ बालिक, १४, ८२,
 ६५, ६६, १३१, १

अक्षर वाच्यार्थ, २३
 आर प्रमत्तिदा, १०
 अक्षरमय, ७०
 अक्षर, १४७
 अक्षरार्थानुसार, १६
 अक्षरार्थानुसार, ४१
 अक्षर वार्षिकी, ६१
 अक्षर, ५६, ६०
 अक्षरानुसार, १३४, ७०, १२६
 अक्षरार्थानुसार, ७०
 अक्षरार्थानुसार, १३, ६५
 अक्षरार्थानुसार, ६३, ६४, ११०
 अक्षरार्थानुसार, १०६
 अक्षरार्थानुसार, २०
 अक्षरार्थानुसार, ६६
 अक्षरार्थानुसार, ६३
 अक्षरार्थानुसार, ६४
 अक्षरार्थानुसार, ६४, १२३, १६३, १६७
 अक्षरार्थानुसार, १२६
 अक्षरार्थानुसार विषय, १२७
 अक्षरार्थानुसार, १४३
 अक्षरार्थानुसार (६३), ६६
 अक्षरार्थानुसार, २३, ७३
 अक्षरार्थानुसार स्थिति, १५७
 अक्षरार्थानुसार और महावीर का शासन अक्षर,
 ६६
 अक्षरार्थानुसार, ५५
 अक्षरार्थानुसार, ५६, ६६
 अक्षरार्थानुसार, ७०
 अक्षरार्थानुसार, (अक्षरार्थ) १३६
 अक्षरार्थानुसार, १५०
 अक्षरार्थानुसार, ६६
 अक्षरार्थानुसार, १६, ७३, ८८
 अक्षरार्थानुसार, १७, १११

अक्षरार्थानुसार, ५५, ६६
 अक्षरार्थानुसार, ८६
 अक्षरार्थानुसार परम्परा, ६२, १५७
 अक्षरार्थानुसार, १४, १८, ८३, ८८
 अक्षरार्थानुसार, १३४
 अक्षरार्थानुसार के अक्षर, १३५
 अक्षर, ६१
 अक्षरार्थानुसार सक्षर, २३
 अक्षरार्थानुसार, ३
 अक्षरार्थानुसार, १६
 अक्षरार्थानुसार, १२०, १५६
 अक्षरार्थानुसार, ४१
 अक्षरार्थानुसार, ८१
 अक्षरार्थानुसार, ११, २३
 अक्षरार्थानुसार (अक्षरार्थ), ७४
 अक्षरार्थानुसार, २८, १५७
 अक्षरार्थानुसार, १६
 अक्षरार्थानुसार, ५७
 अक्षरार्थानुसार, ७३
 अक्षरार्थानुसार, १३६
 अक्षरार्थानुसार, ३
 अक्षरार्थानुसार, १६
 अक्षरार्थानुसार, २०
 अक्षरार्थानुसार, ८२
 अक्षरार्थानुसार, ११, ६४
 अक्षरार्थानुसार, ६
 अक्षरार्थानुसार, १७१, १७६
 अक्षरार्थानुसार, १००
 अक्षरार्थानुसार, ६६
 अक्षरार्थानुसार, १८, ७३
 अक्षरार्थानुसार, १६०
 अक्षरार्थानुसार, १४८
 अक्षरार्थानुसार, १८
 अक्षरार्थानुसार, ७
 अक्षरार्थानुसार, १००

देवदान, १६, १८
 दोहिरिया, २०
 दोनी, बेबरदाग ८३
 ध्यान, १४६
 घनावह, ११४
 घर्मे, १७३
 घवसा, ८०
 घर्मद्वय, १३३
 घर्मतत्त्व, १३०
 घर्म और अहिंसा, १२६
 घर्मकथा, ६३
 घर्मचक्रवर्तन ३३, ३५
 घर्मप्रचार, ६१
 घर्मचिन्ता, १८
 घर्मपद बहुकथा, ११२
 घरतमुद्याणिय, २०
 ग्यामवैशेषिक, १२
 गच्छावर्त, ३१
 गन्दिधर्म, ११०
 गन्दिनीपिता, ६३
 गन्दी, ८०
 गन्धि कुर्मी, ७८
 गन्धीसूत्र, २६, ८१, ८२, ८६, ८३, ८४, ८५, ८६,
 गवगण, ६०
 गमि, ७३
 गय, १४३, १४४
 गव पदार्थ, १२, १३२, १३३
 गमिराज, ८८
 नाट्यपाला, १०२
 नामाङ्ग, ७८
 नामकर्म, १३६
 निगठगातपुत्र, २५, १११, ६५, ३७, ११
 ११२, १६३, १६४,
 नायाधम्मवहाओ, १८, ६३, १०१, १५६,
 १५७, १५८, १५९

मारागण, ७३, ८८
 मायग्या, ३८, ४४, १११
 निषेध, २०
 निर्भग, १४०
 निगण्ड, ३७
 निषेध आगुण, २३
 निगितागान, ४२
 नियतियाव, १३, १४, १८, ४७
 नियतिवादी, ४४
 निक्षीप, ८६
 निरयावनिवा, २६
 निष्काम कर्मठता, १७७
 निष्कामध्यात्री, २५, ५०, ९६
 निष्कामजीनासजीवाद, ११
 पउमचरिय, २५
 पकुध कच्छायन, ११
 पदावर, ३२
 पधिकयम, ६८
 पव महावत, १४८
 पवमुष्टि, ३७
 पवज्ञान, १३७
 पव महावत, ६६, ८६
 पचास्तिकाय, १३३, १३५, १३६, १३७
 पञ्चवणा, ८१
 पञ्चापनामूत्र, ३०
 पञ्चावावरणाव, ६५
 पद्धिमा, ८४
 पङ्कुरग,
 पदार्थ स्वरूप, ६१
 परमहस, १६
 परमेश्वर, १७७
 परिप्राजक, १७
 परिशिष्ट पर्व, ६६
 पर्वोवाधिक नय, १४३
 परोपह, १४८

प्रभुच काव्यायन, २३
 धार प्रज्ञाविद्या, ६०
 प्रतिग्रमण, ७०
 प्रतिभा, १४७
 प्रत्याख्यान पूर्व, ६६
 प्रतिबोधन, ४१
 प्रथम परमेष्ठी, ६१
 प्रमाण, ५६, ६०
 प्रवचनसार, ११४, ७०, १२६
 प्रवचनसाधक, ७०
 प्रवचनकारणाय, १७, ६५
 प्रवेनप्रित, ६३, ६४, ११०
 प्रवृत्तबन्दी, १०६
 परपरिवाहय, २०
 परितर्क भेद, ६६
 परिचात्रक, ६३
 प्रतिभा, १४
 परिनिर्वाण, ६४, १२५, १६३, १६७
 परिनिष्ठाणमुत्त, १२६
 प्रतिप्रोविता विषय, १२७
 प्रमाण, १४३
 प्रकीर्णक ग्रन्थ (दस), ६६
 पाइयापीरस, २३, ७३
 पारिवारिक स्थिति, १२७
 पार्थनाथ और महावीर वा शासन भेद,
 ६६
 प्राकृत, ५५
 प्राणावाय, ५६, ६६
 पाटलिपुत्र, ७८
 पाप भेद, (मठारह) १३६
 पारमिता, १५८
 पाषा समीक्षा, ६६

पार्थनाथ, ४४, ६६
 पार्थनाथ मूर्ति, ८६
 पार्थनाथीय परम्परा, ६२, १५७
 पासाय, १४, १८, ८३, ८८
 पुद्गल, १३४
 पुद्गल के भेद, १३५
 पुत्र, ६१
 पुराणगार मंत्रह, २५
 पुद्गल, ३
 पुराणार्थवाद, १६
 पुराणार्थसिद्धिपुराण, १२०, १४६
 पुष्पकोकिल, ४१
 विष्णुनिर्मित, ८१
 पूरण करसय, ११, २३
 पूर्व (चौदह), ७४
 पूर्वमय, २८, १२७
 पोतिय, १६
 पोनास, ४७
 पिलिस्तीन, ७३
 लघु, १३६
 लघोचिस्तान, ३
 बहुवचन, १६
 बहुवचन, २०
 ब्रह्मचर्य, ८२
 ब्रह्मज्ञानमुत्त, ११, ६४
 ब्रह्मभूत, ६
 बापु, १७१, १७६
 बासठ कसार्थ, १००
 बासम, ६६
 बाहुक, १८, ७३
 बिहार स्थल, १६०
 बारह बावना, ५

१६, ७३, ८८

साहित्य, १७, १११

- विम्बितार, १०५, १०६
 विलवासी, १६
 बुद्ध, ६५, १५५, १६७
 बुद्धघोष, ११३
 बुद्धचरित, १६
 बूलर, ३०
 घेवर, ६१
 बौद्ध, १७
 बौद्धधर्म, ८६
 बौद्धदर्शन, ८७
 बौद्ध सम्प्रदाय, ६२
 भउच्च, १६
 भगई, १६
 भगवती आराधना, ८०
 भगवतीसतक, ४४
 भगवती सूत्र, १३, ३०, ६६, ८०, ६१,
 १३७
 भगवान महावीर, १८०
 भरत, २८, १३४
 भद्रबाहु (द्वितीय), ८१
 भद्रबाहु, निर्मुक्तिवार, ७५
 भद्रबाहु धुनकेवली, ७५
 भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, ४
 भारतीय संस्कृति : एक समाजशास्त्रीय
 समीक्षा, १७८
 भारद्वाज, १८
 भविष्यशेष, ४१
 भावपाह्व, १२१
 भिष्मपुत्र, १८
 भूदक्षिण, २०
 भेदविज्ञान, ३७, १२६
 भगव, ५६, ६६, १०५
 मनोबोधवादी, १७
 भम्म, ६५, ६८
 महाकदम्बर, १८
 मकन्तलि, १४
 मकन्तलि गोशाल, ७३, १६३, ४४, ११,
 १३, २३
 मसिलपुत्त, १८
 मातंग, १८
 मज्झिमनिकाय, ६५, १०६, १११, १११,
 १५६, १५८, १६४, १६६
 मज्झिमसार, ६६
 मध्यमपावा, ३६, ५६, ५१
 महापुराण, २६
 मत्स्य-मास मक्षण, ८५
 मरीचि, २८
 मण्डित, ५६, ५६
 मण्डक, १६५
 महावज्र, ६३
 महापद्मि राहुल, १६३
 महापुरुष सदान, १५६
 महापुराण चरित,
 महावस्तु, ११३
 महावत, १२१
 महात्मा बुद्ध, ७३
 महामिनिष्कमण, ३७, ३६, ६५, १५६
 महासतक, ६३
 महावीर, १-१८०
 महावीर चरित, २५, ३४
 महावीर चरित, २८
 महावीर स्वामी श्रीशालिषी, २६
 मानभूमि निहभूमि, २०
 मातृकाशर, १००
 मांसमक्षण, १७६
 मांस वस्ती, ८५
 मातुरी, ७८
 मातुराशर, १८
 विष्णुहृष्टिषी, ११, ८६
 विष्णुहृष्ट, १६

- वैद्याली, २६, ३६, ५६, १११, ११३,
 १५७
 वर्धमानकाव्य, २६
 वर्धमानपुराण, २६
 वहुमानकहा, २५
 वैश्रमण, १८
 वाधाला, ३८
 विज्जुअंतरिमा, २०
 वरिस्तव कण्ह, १८
 वापुपिय, १८
 विदेह, १६
 वरुण, १८
 वर्षावास, ३८, ६१, ६२, १६०-३
 वाराणसी, २६
 विशिष्ट भटनाय, ३६
 वक्कपोसी, १६
 वेलवासी, १६
 वायुभूति ५६, ५८
 विद्येयावरयक भाष्य २५, ५८, ५९, ६०,
 ७०
 वैदिक संहिता, ८८
 विपाकसूत्र, ६०
 विनय, १२२
 विमज्जवाक, ८६
 वासवदत्ता १०७
 बोटिक (दिगम्बर), ६०
 विद्याह वण्णति, ६१
 वर्मा ३
 वात्ररचना, ५
 वर्धमानचरित, २५
 बीरोदय, २६
 व्यक्त, ५६, ५९
 व्याकरण महाभाष्य, ६
 विनयवाद, १२, १३, १४
 वृद्धा, १८
 वैदिक आचार्य, १४, ६६
 वायुजीववादी, १७
 वैश्यायन, ४६
 विहार, ५०
 वेचरदास दोषी, ३१
 वेत्तालिय, ३२
 वणिग्गाम, ३२
 वामुकुण्ड, ३२
 वमुभूति, ५६, ५८
 वत्तीसंध, ६३
 वृद्धकल्प, ८१
 वनस्पतिशास्त्र, ६२
 वीरभद्र, ८१
 विवागमुय, ६५
 वीर्यप्रवाद पूर्व, ६६
 विद्यानुवाद पूर्व, ६६
 वीरसेन, ६८
 विनयपिटक १११
 वण्ण थावक, ११२
 वारियेण, १०७, १०८
 विवशाति, १५१
 वन(वारह), १४७
 वैद्येयिक, १३५
 वैदनीय वर्म, १३७
 विदेही रामगुप्त, ७३
 वैदिक शास्त्रिक, ७३
 वीर निर्वाण वीर जैन वासवगता, ८०
 विचार श्रेणी, १२६
 वेदर, ८०
 व्यतिरिक्त विचार वीर प्रभाव, १७७
 वज्रपी, ७८
 वाद्यकार, १०१
 वीरभद्र, १८
 वाचक, २०
 वाद्येय, ३०, ३९

स्वेताम्बर परम्परा ६०, ६१, ६७, ६८,
१०६, १४७, १४८, १४७, १४८,
१४६

स्वेताम्बी, ३८

सत्तानीक, ६३

शय्यमद, ८१

शरीर प्रकार, १३४

सत्तानीक, ११०

शादिनास दाह, १७

शास्त्रशास्त्रमिष्टम, १६

शालवृक्ष, ५०

शिव, ११०

शीलांश, १५, ८२, ८५

शुचिदत्त, ५६

शुष्यवाद, ५६

शूलशान्ति, ४१

पहलंशान्ति, ३७, ८२, ८३, ८५, ८८

पञ्चमदक, १४८

स्वामि पुराण, ८

स्नान १०२

स्वापत्यकला, १०१, १०२

स्वाप्नाद, ८६, १२३, १४५

स्वभाववाद, १६, १८

सकुली, ३२

सलहि, ८४

सन्तधम्मक, १६

सला, १६

सत्य के प्राकृतिक-अप्राकृतिक उपसर्ग, ४७

सगीत, १०१

सधप्रमाण, ६३

सधाल, ३

सपकाल, १६

समाप्ति, १३३, १३४, १३७

समुत्तनिकाय, ६४, ११२

ससेल, ७०, ८२

सत्यक निर्मातृपुत्र, ११३

सत्य केमिष्टिपुत्र, २३, ७३, ११, १३

सद्धर्मा, १६

सद्दामपुत्र, ६३

सन्मिदगितर, ५०

सटिमांश, ६६

सत्तावीज प्रज्ञा, १७४

सत्यपरिष्ठा ८२

सम्पदापरिष्ठ, २५

सप्त सत्य १३१, १३२

सम्मादिष्टि १३१

सत्य १२३

सत्य-अहिंसा १७७

सत्यधर ६३

सर्वोदयी तीर्थ १२४

सर्वज्ञता ११२

सत्तापरितरिया २०

समभाव १२३

समयमुन्दरवर्णीकृत समाचारी शतक, ७८

सर्वधर्ममममाय, १७३, १७६

सर्वोदय, १७६

समवायांश, २५, २८, ३०, ८०, ८२, ८१,

६३, ६४, ६८, १००, १३६

सत्त्वनाश्रय, ६४

सद्धर्मा, १५०

समाजवाद, १५, १२५

समन्तमद, २७, १५०, १७५

समुद्रगुप्त, ८८

सहर, १४०

सत्यप्रवादपूर्व, ६६

समवधारण, ११५

समता, ११६

सन्देहवाद, १४५

सन्तमयी, १४५

सत्यस्वर, १०१

१६२ परिशिष्ट

सप्त निहव, ६०
सम्पन्नान, १४२
सम्पन्नान के प्रकार, १३२
सम्पन्नान, १३१ (आठ वग) १४०
दोय, (पञ्चोत्त) १४१
सम्पन्नान, १४६
सर्वोदयवादिता, १७६
सर्वोत्तिवादी, १३८
समिहार, १६

मामुच्छेद, २०
मारिपुत्र, ७, १५५ (कुड) १८
मार्यवाह, ६३
मायन, ५

मायनमाध्य, ५, ६
मानिहीनिता, ६३
मिह मेनापनि, १११

गुणमात्र, ३१
माध्य, १२

मुद्रादन, १३७
मिडार्थ, ४०, ६८, १२७

मिडारियागोव, ५१
स्मिरवामी मिड, ८२
मीह, १६५

मुद्रात, २३

मुलनिगान, ६५

मुद्रार्थ, २६, ५६

मुनीनिमुभार कटनी, ४
मुद्रादेव, ६३

मुद्रात, ७३

मुद्रात, १०

मुद्रात, ३८

मुद्रात, ४२

मुद्रात, १२, १३, १४, १५, १६, १८,
२५, ८६, ८८, ८९, १२१, १३१,
१६६, १६७, १६८

मुद्रात, १६

मुद्रात, १६

मुद्रात, ४३

मुद्रात, १३६

मोय, १८

मोरियायन, १८

हृन्मन जेकोबी, ६५

हृन्मन, ६४, ६६

हृन्मन, १८

हृन्मनगुण, ६३

हृन्मनगुण

हृन्मनगुण, १५०, १५१, १२३

हृन्मनगुण, ४५

हृन्मनगुण, १६

हृन्मन, १६

हृन्मन, ६६

हिमा (कारण), १२०, हिमा भेद, १

हिन्मनगुण, १७८

हिन्मनगुण, १६

हिन्मनगुण, १७८

हिन्मनगुण, ४

हिन्मनगुण, ६३, १०७

हिन्मनगुण, ६६, १५२

हिन्मनगुण, १६

हिन्मनगुण, ६३

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

हिन्मनगुण, १३६

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

$$\frac{d}{dt} \left(\frac{1}{2} m v^2 \right) = \vec{F} \cdot \vec{v}$$

1. 1990년대 초반부터 시작된 '문화의 대중화' 정책은, 문화의 접근성을 높이고, 문화의 향유를 확대하는 데 중점을 두었다.

[illegible]

제1차 5개년 계획(1962-1966)은, 중화학공업 개발을 추진하는 한편, 농업·수산업의 개발, 주택·도시개발, 국민생활의 향상, 교육·문화·체육의 진흥을 도모

1. The first part of the document is a letter from the President of the United States to the Congress, dated January 8, 1907. It contains the following text: "I have the honor to acknowledge the receipt of your communication of the 6th inst., and in reply to inform you that the same has been forwarded to the proper authorities for their consideration."

1997年12月1日

한국의 경제 발전에 있어서는 무엇보다도 인적 자원의 개발이 중요하며, 이를 위해서는 교육의 질을 높이고, 직업 훈련을 강화하는 것이 필요하다. 또한, 기술 혁신을 촉진하고, 창업 환경을 개선하는 것도 중요하다.

1. 1990년대 초반부터 시작된 '문화유산의 가치 재발견' 움직임
 2. 1995년 제정된 「문화유산보호법」의 시행을 계기로 본격화

[illegible][illegible][illegible]

1. 1990년대 초반, 한국에서 처음으로 도입된 '신용평가' 제도는
 2. 1995년, 한국에서 처음으로 도입된 '신용평가' 제도는

[illegible]

Page 1 of 1

कृष्ण कृतं च वसिष्ठोक्तं हि

የተገኘው ሥራ የባለ ሀብትና የሰው ኃይል መስተዋወቅ ተፈጻሚ ይሆናል

[illegible]

[Faint handwritten notes at the bottom of the page]

1942, 1943, 1944, 1945, 1946, 1947, 1948, 1949, 1950, 1951, 1952, 1953, 1954, 1955, 1956, 1957, 1958, 1959, 1960, 1961, 1962, 1963, 1964, 1965, 1966, 1967, 1968, 1969, 1970, 1971, 1972, 1973, 1974, 1975, 1976, 1977, 1978, 1979, 1980, 1981, 1982, 1983, 1984, 1985, 1986, 1987, 1988, 1989, 1990, 1991, 1992, 1993, 1994, 1995, 1996, 1997, 1998, 1999, 2000, 2001, 2002, 2003, 2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 26

ଉତ୍ତରୀୟ ଶକ୍ତି ସିଂହ ଶରୀରରୁ ବାହାରି ଆସୁଥିବା ଏକ ଶକ୍ତିଶାଳୀ ଶକ୍ତି, ଯାହା ଶରୀରରୁ ବାହାରି ଆସୁଥିବା ଶକ୍ତିର ଏକ ଶକ୍ତିଶାଳୀ ଶକ୍ତି।

[illegible][illegible][illegible]

1944. 1945.

कहावली—मन्नेश्वर, स० डॉ० यू० पी० शाह, मायकवार ओरियन्टल मिरोर, बंगाल
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२

गांधी : अस्तित्व, विचार और प्रभाव — बाबा कालेलकर

गांधीवाद् की शव परीक्षा—यशपाल, विप्लव कार्यालय, मदनमऊ

पद सारम्—स० डॉ० भागवन्त जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर

भारतीय—५० गुणसाल संघर्ष

અમુદીય પ્રગતિ—દેવચન્દ્ર સાલભાઈ પુસ્તકોદ્ધાર કળ, મુરત ૧૯૨૦

ऐनधर्म का मोनिक इतिहास—भा० हस्तिना, अमरपुर १९७१, १९७४

श्रीन गार्हपत्य का गृहद्व द्विभाग—डॉ० मेहता, चौधरी गुनाबकाद, पारवनाथ विद्यालय,
बारागंभी

अन साक्ष्य का इतिहास पूर्वोक्ति—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्गी प्रथमभाषा,
वाराणसी

श्रीविष्णु इव शक्तिरिति नित्येश्वर—क(०) भागवतम् जैन, श्रीगुरु प्रकाशन, नागपुर

त्रैन साहित्यमा विचार—बेचरदाग बोधी

बैन म्हा एण्ड अदर एन्टिक्वीटीज मॉर्निंग मधुरा

प्रेतादम साहित्य म मागनीय समाज—हा० जलदीपकश्रु जैन, बीकानेर विद्याभवन,
बाणगढी

टाकामसूत्र — व्याख्याकार — ममोचक श्रुति, जैन मत, द्वैतरासाद

सुखार्थं मायारूपं ज्ञानं साधयामास, अथवा, १६०६

प्रधानी व निरुद्ध - अथवा हट्ट, ल० उ० मध्ये प्रमुखात, मागील ज्ञानपीठ, काशी,
१९५३, १९६३

दस्तावेज — उपाध्याय, अ.०. ई. पाठ्यपत्र शास्त्री, मद्रास बी. ए. वि. म. २४५३

[illegible]

ਸੰ.ਵਿ. ੪ ਸਮਾਜਿਕ ਅਤੇ ਤਨਾਬੀ ਸਾਧਨਾਂ ਵਰਤੋਂ - ਭੀਮ ਸਿਨਘ ਸਾਹੀ, ਸੀ. ੧੯੮੧
ਬੰਨਾਰਸ, ਸਾਹਿਤ ੧੯੮੬

[illegible]

निर्वाह - म. प्र. विद्यापीठ, मुंबई

பிழைப்பு - 1974-75 இல் 8.47 ரூபாய் அளவுக்கு, 1975-76

[illegible]
$$E = \{ \psi \in L^2(\Omega) : \psi|_{\partial\Omega} = 0 \}$$
[illegible]

6-월-27일 - 목요일

ਸ਼੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਗ੍ਰੰਥ ਸਾਹਿਬ ਜੀ

सायन अद्वैत—मं० एव०वी० सायन

सायनरवि—सं० वी० श्री० सायन, पुना १९४०

संसारार शक्तिवृत्ति—सं० दत्तमुन आनन्दविद्या, गिरी जैन छन्दमाला, बम्बई,
वि०सं० २००२

सर्गपुर—आकाशकार, आकाशम श्री, मुनिमाना, १९९६

सायनामदहाओ—मं० सोमाचन्द्र आश्रित, अहमदाबाद १९९४

संसारविद्या—सुन्दरपुर, जैन दत्त सायनर कार्यालय, बम्बई १९९६

संसार वरीया—सनातन जैन छन्दमाला

संसारवृत्ति—मं० शङ्कर मोहम्मदायन, काशीप्रसाद आश्रितकाल संस्धान, पटना,
वि०सं० २०१०

संसारवृत्ति—सुन्दरपुर, सायनर जैन सायनमाला, बम्बई १९९५

संसारवृत्ति—आकाशकार अयोग्य शक्ति, जैन संघ, हैदराबाद

संसारवृत्ति—आकाशकार अयोग्य, मं० डॉ० जेजीवी, बलकला, १९९२

संसारवृत्ति—निर्जय सायन सेन, बम्बई

सायनमाला—बोरसापुर

सुन्दरपुर—संसारवृत्ति संसारक सायन, बम्बई

सुन्दरपुर—संसारवृत्ति, मं० आकाशकार मोहम्मदी, अहमदाबाद १९९७

सुन्दरपुर—आकाशकार अयोग्य सेन, पटना १९९६

सुन्दरपुर—आकाशकार अयोग्य जैन, आकाशकार सायन सायनपुर

संसार महावीर—दत्तमुन आनन्दविद्या

संसार महावीर : एक अनुसूचित—देवेन्द्र मुनि सायन

संसार महावीर के जीवन में प्रति आकाशकार पटनाओं का पुनर्जागरण—

डॉ० श्रीमती सुन्दरपुर जैन, मुलती प्रसा, १९७६

अनन्तमूर्ति—अनन्तदेव शक्ति शक्ति महिष, विनायक प्रचारक लया, अहमदाबाद
१९९२-९३

भारतीय इतिहास : एक इतिहास—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
१९४७

भारतीय इतिहास : एक समग्रभारतीय आकाश

भारतीय इतिहास में जैनधर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद्, भोपाल १९६२

महावीर इतिहास—मैत्रिका, आकाशकार लया, सायनपुर १९९६

महावीर इतिहास—डॉ० अनन्तमूर्ति, बिहार राज्य १९५८

महावीर—डॉ० सेनाटे, पेरिस, १९८२-१९८७

महावीर—डॉ० आ० डी० अन्वर, बम्बई १९४०

महावीर—मुनि अनन्तमूर्ति छन्दमाला, १९९६

- कहावली—महेश्वर, सं० डॉ० यू० पी० शाह, गायकवाड ओरियन्टल सिरोज, बडोदा
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२
- गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—काका कालेलकर
गांधीवाद की भाव परीक्षा—यशपाल, विप्लव कार्यालय, लगनऊ
चतुःशतकम्—स० डॉ० भागचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
चार तीर्थंकर—पं० मुक्षालाल सखवी
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—देवचन्द्र लालमार्ई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत १९२०
जैनधर्म का मौलिक इतिहास—भा० हस्तिमल, जयपुर १९७१, १९७४
जैन साहित्य का गृह्य इतिहास—डॉ० मेहता, चौधरी गुलाबचन्द्र, पार्वनाथ विद्यालय,
वाराणसी
जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्णा ग्रन्थमाला,
वाराणसी
जैनगम इन बुद्धिस्ट लिटरेचर—डॉ० भागचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
जैन साहित्यमा विकास—बेचरदास दोषी
जैन स्तूप एवं अदर एस्टिम्बेटीज ऑफ मथुरा
जैनगम साहित्य में भारतीय समाज—डॉ० जयदीशचन्द्र जैन, श्रीलम्बा विद्यालय,
वाराणसी
टाणागमुन—व्याख्याकार—अमोलक श्रुति, जैन सभ, हैदराबाद
सरकार्यभाष्य—रायचन्द्र जैन शास्त्रमाता, बम्बई, १९०६
सरकार्य वाचिक—अमलकदेव, स० डॉ० महेश्वरदुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, नागो,
१९५३, १९५७
सरकार्यमुन—उमाशक्ति, अनु० कैलाशचन्द्र शास्त्री, मथुरा बी०नि०स० २४७७
निम्नोवागमि—आचार्य विनयस स० डॉ० उमाधे, जैन संस्कृति संस्था सभ,
कोटापुर, १९५१
तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—डॉ० केविलचन्द्र शास्त्री, जैन विद्वत्
परिषद्, नागपुर १९७४
विपनिःशताष्टापुराणविनि—आचार्य हेमचन्द्र, जैनधर्म प्रसारक संघ, नागपुर,
१९०६-१९१३
वेदवाचा—स० जयदीश चन्द्र, विद्वत् सभ, १९५६
दुर्लभ—देवदेवचन्द्र, जैन सभ संस्था संस्था संस्था, बम्बई, १९२०
द्रष्टव्य—नेतिचन्द्र स० वंशाश्रित्य कांतिन, वर्णा ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९९६
द्वैतवाचिक—स० डॉ० सुषमी, देवदेवचन्द्र संस्था, बम्बई, १९९३
द्वैतवाचिक—स० डॉ० सुषमी, देवदेवचन्द्र संस्था, बम्बई, १९९३
विपनिःशताष्टापुराणविनि—आचार्य हेमचन्द्र, जैनधर्म प्रसारक संघ, नागपुर,
१९०६-१९१३

धम्मः प्रवृत्तः—सं० लक्ष्मी० नारयण

धम्मसंघ—सं० पी० व्ही० वापट, पुना १९४०

ध्यानाभार वाटिचरुति—सं० दत्तगुण नामवर्णिता, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई,
वि० सं० २००५

महीमुख—व्याख्याकार, आत्माराम जी, सुविधाना, १९६६

मायाधम्मकहाओ—सं० धोनाथगुप्त मारिस्न, अहमदाबाद १९६४

मज्झिमनिकाय—बुद्धबुद्ध, जैन ग्रन्थ रत्नाकर काव्यविषय, बम्बई १९१६

प्रमाण परीक्षा—सनातन जैन ग्रन्थमाला

प्रमाणवर्णिक—सं० राहुल सोहृत्पावन, बामीप्रसाद ज्ञानमहाल सहजान, पटना,
वि० सं० २०१०

प्रवचनगार—बुद्धबुद्ध, रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई १९३५

प्रवचनकारणमूल—व्याख्याकार अमोलक श्रुति, जैन मठ, हृदयबाद

परिचिष्टपरबन्—आचार्य हेमचन्द्र, सं० डॉ० जेबोबी, कलकत्ता, १९३२

परीक्षाभुज—निर्णय नामर प्रेम, बम्बई

पादामपीठा—गौरसपुर

पुराणार्थ निबन्धनाय—परमश्रुत प्रसादक मण्डल, बम्बई

बुद्धचरित—अरुणोप, सं० चर्मनन्द बीजापुरी, अहमदाबाद १९३७

बौद्धधर्मदर्शन—आचार्य नरेन्द्र देव, पटना १९५६

बौद्ध महाविद्यालय का इतिहास—डॉ० आनन्द जैन, आसोक प्रकाशन नागपुर

मगधान महावीर—दत्तमुख मालवविद्या

मगधान महावीर : एक अनुशीलन—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

मगधान महावीर के जीवन में घटित सामाजिक घटनाओं का पुनर्निर्माण—
डॉ० श्रीमती पुष्पसता जैन, मुमती प्रसा, १९७६

मगधनीमूल—अमरदेव गुरि कृति सहित, विनायक प्रचारक समा, अहमदाबाद
१९२२-३१

भारतीय इतिहास . एक दृष्टि—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
१९५७

भारतीय संस्कृति : एक समाग्रशास्त्रीय व्याख्या

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद्, भोपाल १९६२

महावीर चरित—नेमिचन्द्र, आत्माराम समा, वायनवर १९२६

महिम्नमनिकाय—सं० जगदीश कादम्बर, बिहार राज्य १९५८

महाबसु—सं० सेनार्ट, पेरिस, १८८२-१८९७

मिलिन्दपण्ह—सं० भाग० वी० बटेकर, बम्बई १९४०

मूलाचार—मुनि अनन्तवीर शास्त्रमाला, १९१६

कहावची—मद्रेश्वर, स० डॉ० यू० पी० दाह, गायकवाड ओरियन्टा मिरोर, कोरा
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२

गांधी अतिरात, विचार और प्रभाव — काजा कानेमकर

सांभोराज की शत्रु परीक्षा— यशदास, विद्याव कार्यालय, भगनऊ

१११ गीतम्—सं० डॉ० मागवन्ध जीन, आलोचक प्रकाशन, नागपुर

कार तीर्थहर—पं० गुरुभाग सखनी

अभ्युदय प्रगति — देवचन्द्र ताम्रबाई तुम्हकोडार कण्ड, मुरात १९२०

अनवरत वा मोहित इतिहास—आ० कमलसम, मयपुर १९७१, १९७४

भेल माहिराय का मुख्य इतिहास - डॉ० मेरुना, चौधरी सुवासचन्द्र, वासन्त राय विद्याधर.

बारागनी

३२० काठियावाड़ का इतिहास पृथ्वीदिवस-१० केनामनगढ़ वास्ती, यहाँ समुद्रतटा,

मा राजन्सो

३११७ एन वृत्तुः ११८७४ — डॉ० माधवश्र औन, आनोह प्रकाश, माधव

श्री-न साहित्यमा विचार उपर्याग वागी

बैत कयूँ एण्ड जेवरा तालिनीहीरीन अतिह मयूरा

देव लव माद्रिय म मास्तीय लमात्र—इति जलदीपवद् देव. श्रीलक्षा विद्यावा.

सुखं भवति ॥

८-बामन्य स्वर्गकाकार - समानक भूमि, तीन सप्त, द्वैतवाच

କଟକ ସମାଜ - ପ୍ରାୟତଃ ଏହି ଗାନ୍ଧିଜୀମାଳା, ଶେଷଟି, ୧୯୦୯

ଜ-ବର୍ଣ୍ଣ ସଂସ୍କୃତ ଶବ୍ଦ-ମାନଙ୍କର ଅର୍ଥ ଓ ବ୍ୟାକରଣ, ଆଶୀଷ ମାଧବୀ, ପାଖି,

बम्बई अदालत—सं० एच०बी० नारमन

बम्बई नगर—सं० वी० एच० बाबट, पुना १९४०

बम्बई नगर न्यायिक—सं० बलराम मानवनिधा, निधी जीन बम्बई, बम्बई, १९००-२००३

बागीच—आध्यात्मिक, आध्यात्मिक, मुनिवादा, १९६६

बागीचबहादुर—सं० बागीचबाद नारमन, अहमदाबाद १९६४

बागीचबाद—सुन्दर, जीन बम्बई बम्बई, बम्बई १९१६

बागीचबाद—सुन्दर, जीन बम्बई

बागीचबाद—सं० बागीच नारमन, बागीचबाद आध्यात्मिक संस्थान, पटना, १९००-२०१०

बागीचबाद—सुन्दर, बागीचबाद जीन बागीचबाद, बम्बई १९३५

बागीचबाद—आध्यात्मिक आध्यात्मिक, जीन बम्बई, अहमदाबाद

बागीचबाद—आध्यात्मिक आध्यात्मिक, जीन बम्बई, अहमदाबाद १९३२

बागीचबाद—निर्मल नारमन, बम्बई

बागीचबाद—बोरोबाद

बागीचबाद—बोरोबाद—बोरोबाद प्रकाशक बम्बई, बम्बई

बागीचबाद—अहमदाबाद, सं० बागीचबाद बागीचबाद, अहमदाबाद १९३७

बागीचबाद—आध्यात्मिक आध्यात्मिक, पटना १९५६

बागीचबाद—आध्यात्मिक आध्यात्मिक, आध्यात्मिक प्रकाशक बागीचबाद

बागीचबाद—अहमदाबाद आध्यात्मिक

बागीचबाद : एक अहमदाबाद—अहमदाबाद मुनि बागीचबाद

बागीचबाद के आध्यात्मिक आध्यात्मिक पटनाओं का पुनर्निर्माण—

सं० बागीचबाद मुनिबाद जीन, मुनिबाद प्रकाशक, १९७६

बागीचबाद—अहमदाबाद मुनि बागीचबाद, अहमदाबाद प्रकाशक बम्बई, अहमदाबाद १९२२-३१

बागीचबाद : एक अहमदाबाद—सं० बागीचबाद जीन, भारतीय आध्यात्मिक, बागीचबाद १९५७

बागीचबाद : एक अहमदाबाद आध्यात्मिक

बागीचबाद में आध्यात्मिक आध्यात्मिक—सं० बागीचबाद जीन, अहमदाबाद आध्यात्मिक, अहमदाबाद १९६२

बागीचबाद—अहमदाबाद, आध्यात्मिक बम्बई, अहमदाबाद १९२६

बागीचबाद—सं० अहमदाबाद आध्यात्मिक, अहमदाबाद १९५८

बागीचबाद—सं० अहमदाबाद, अहमदाबाद १९५७

बागीचबाद—सं० अहमदाबाद, अहमदाबाद १९५०

बागीचबाद—मुनि अहमदाबाद आध्यात्मिक, १९१६

कहावली—मन्त्रेश्वर, स० डॉ० यू० पी० दाह, गायकवाड ओरिएण्टल गिरोन, बंगल
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—काका कानेलकर

गांधीवाद की शव परीक्षा—यशपाल, विप्लव कार्यालय, समनऊ
चतु.दातरम्—स० डॉ० भागवन्द्र जैन, आलोचक प्रकाशन, नागपुर
पार तीर्थकर—पं० गुलसाल सक्सी

जम्बूद्वीप प्रशस्ति—देवचन्द्र शास्त्रभाई पुस्तकालयार कण्ड, सूरत १९२०

अनघमं का भौतिक इतिहास—आ० हस्तिमल, जयपुर १९७१, १९७४

अन ग्राह्य का गृह दत्तिहास—डॉ० मेहता, बी०री मुनाबख्श, पार्श्वनाथ त्रिपाथ्य,
वाराणसी

अन साहित्य का इतिहास : पूर्वपीठिका—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्गीय सम्प्रदाय,
वाराणसी

जैनगम इन ब्रिटिश नोटरेचर—डॉ० भागवत जैन, आचार्य प्रकाशन, नागपुर

जैन साहित्यमा विशार— जेष्ठरदाग दोली

ਭੈਨ ਨਜ਼ੂਤ ਆਂਡ ਮਛਰ ਗ੍ਰੈਫਿਕਵੀਡੀਓਜ਼ ਆਫਿਸ ਲਾਹੌਰ

जैनमय गाहिन्य मे भारतीय समाज—डा० जयशिवभट्ट जैन, बीकानेर विद्यालय,
वाराणसी

टागावमूव — व्याख्याकार — भामोदक श्रुति, जैन सग, हैशरावा

साम्प्रतं प्राप्य—रायचन्द्र जैन शास्त्रमाया, बम्बई, १९०६

सन्धार्य ज्ञानिक-अवलोकनेय, स० डॉ० महेन्द्रकुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
१९५३, १९५७

सन्मार्गसूत्र — उमास्वामि, अमृ० श्रीवाङ्मय साहसी, अक्षरा श्री०नि०मं० २४५५

निधोदाध्यायि—आचार्यो यतिशुक्ल भ० क० उपाधय, जैन भवनार्थी मरमक मय,
कोटापुर, १९६१

सर्वोदय मण्डलीय और उसकी माताएं परमेश्वर - डॉ० लेविथस जॉर्ज, श्री ११३३
बर्मिंघम, मार्च १९७६

निम्नलिखित विषयों पर — छात्रों द्वारा प्रश्न-उत्तर, निम्नलिखित विषय, आदि-विषय,
१९०९, १९१३

निर्वाह - म० अमरीता कान्त, डिप्टी सी.ओ., १९६६

५३२१ - देवदत्त-सिंह जी का नाम गंगा नदी के किनारे, बंगाल, १९२०

[illegible]

— 100 —

हस्तिसंज्ञा - तत्र न स्यात्पक्षे न स्यात्

विष्णुसहस्रनाम - १०० श्लोक - श्रीगणेशाय नमः

[illegible]

धम्मपद अट्ठकथा—सं० एच०सी० नारमन

धम्मसंघण—सं० पी० डी० वापट, पुना १९४०

ध्यायनरत वानिकवृत्ति—सं० दत्तगुण मालवणिया, मिथी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई,
वि०सं० २००५

मन्दीरुत्त—ध्यायनरत, आरमाराम जी, धुमियावा, १९६६

नायकधम्मकहाओ—सं० धोमासन्द आरित्त, अहमदाबाद १९६४

पञ्चमस्तित्राय—कुन्दकुन्द, जैन ग्रन्थ रत्नाकर भाषानय, बम्बई १९१६

प्रमाण परीक्षा—सनातन जैन ग्रन्थमाला

प्रमाणवार्तिक—सं० राहुल सोहृत्पावन, वासीप्रसाद जायसवान संस्थान, पटना,
वि०सं० २०१०

प्रवचनसार—कुन्दकुन्द, रायचन्द्र जैन छात्रमाला, बम्बई १९३५

प्रश्नव्याकरणसूत्र—ध्यायनरत अमोवक श्रुति, जैन संघ, हैदराबाद

परिशिष्टपर्वन्—भाषार्य हेमचन्द्र, सं० डॉ० जेकोबी, बलकला, १९३२

परीक्षासूत्र—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

पाषाणमीसा—गोरक्षपुर

पुराणार्थ मिश्रमुद्रा—परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई

कुडचरित—अश्वघोष, सं० बर्मानन्द कोशाम्बी, अहमदाबाद १९३७

बौद्धधर्मदर्शन—भाषार्य नरेन्द्रदेव, पटना १९५६

बौद्ध संस्कृति का इतिहास—डॉ० आनन्द जैन, आशोक प्रकाशन नागपुर

भगवान महावीर—दत्तगुण मालवणिया

भगवान महावीर : एक अनुशीलन—देवेन्द्र मुनि धारवी

भगवान महावीर के जीवन में घटित साम्प्रदायिक घटनाओं का पुनर्स्थापन—

डॉ० श्रीमती पुष्पमता जैन, तुलसी प्रसा, १९७६

भगवनीसूत्र—अमरदेव सूरि वृत्ति सहित, त्रिनाथम प्रचारक समा, अहमदाबाद
१९२२-३१

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
१९५७

भारतीय संस्कृति : एक समाजशास्त्रीय व्याख्या

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—डॉ० ह्रीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद्, भोपाल १९६२

महावीर चरित—नेमिचन्द्र, आरमाराम समा, भावनगर १९२६

महिम्नमनिकाव्य—सं० जगदीश काश्यप, बिहार राज्य १९५८

महावसु—सं० सेनाई, वेरिस, १८८२-१८९७

मिनिन्दपण्डू—सं० जार० डी० बडेकर, बम्बई १९४०

मूलाचार—मुनि अनन्तकीर्ति धन्वमाता, १९१६

- वहावली—मन्देश्वर, स० डॉ० यू० पी० दाह, गायकवाड ओरियण्टल मिरोन, बरोडा
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२
- गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—काका कालेलकर
गांधीवाद की शक्ति परीक्षा—धनपाल, विप्लव कार्यालय, मंगलूरु
चतुःशतकम्—स० डॉ० भागवन्त जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
चार तीर्थंकर—प० गुणमाल सचवी
जम्बूद्वीप प्रशस्ति—देवचन्द्र तामभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत १९२०
जैनधर्म का मौनिक इतिहास—भा० हरितमल, जयपुर १९७१, १९७४
जैन साहित्य का गृह्य इतिहास—डॉ० मेहता, चौधरी गुलाबचन्द, पारवनाथ शिक्षाभवन,
वाराणसी
जैन साहित्य का इतिहास पूर्वपीठिका—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्णी प्रबन्धनाथ,
वाराणसी
जैनस्य इत बुद्धिस्ट चिन्तरेखर—डॉ० भागवन्त जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
जैन साहित्यमा विचार—बेकरदास बोधी
जैन स्तूप एवं अदर एष्टिबोटीन ऑफ मयूरा
जैनादम साहित्य मे भारतीय समाज—डॉ० जयदीनचन्द्र जैन, जौनसमा विद्यामन्त्र,
वाराणसी
टानायमूत्र—व्याख्याकार—अमोलक श्रुति, जैन सच, हैदराबाद
तत्त्वार्थभाष्य—रायचन्द्र जैन शास्त्रमामा, बम्बई, १९०६
तत्त्वार्थ काविक—अनन्तदेव, स० डॉ० महेश्वरदास, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
१९५३, १९५७
तत्त्वार्थमूत्र—उमाशक्ति, अनु० कैलाशचन्द्र शास्त्री, मयूरा बी०नि०स० ६४७७
विश्वेश्वरचरित्र—आचार्य श्रीकृष्ण स० डॉ० उपाध्ये, जैन संस्कृति मन्त्रालय सच,
वाराणसी, १९५१
तीर्थंकर मठाकीर और उनकी साधार्थ प्रवचना—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, जैन विद्वत्
परिषद्, नागपुर १९७४
विश्वेश्वरचरित्र—आचार्य देवचन्द्र, जैनसर्व प्रकाशक सच, नागपुर,
१९७५, १९७६
देवचन्द्र—स० जयदीन सच, विश्वेश्वर, १९१५
इन्द्रचन्द्र—सच देवचन्द्र जैन सच देवचन्द्र शास्त्री सच, बम्बई, १९७७
इन्द्रचन्द्र—सच देवचन्द्र जैन सच देवचन्द्र शास्त्री सच, बम्बई, १९७७
इन्द्रचन्द्र—स० डॉ० जयदीन सच, विश्वेश्वर, १९७७
इन्द्रचन्द्र—सच देवचन्द्र जैन सच देवचन्द्र शास्त्री सच, बम्बई, १९७७
इन्द्रचन्द्र—स० डॉ० जयदीन सच, विश्वेश्वर, १९७७
इन्द्रचन्द्र—स० डॉ० जयदीन सच, विश्वेश्वर, १९७७

धर्मार्थ अष्टक—सं० एच०भी० मारसन

धर्मसंग्रह—सं० बी० स्त्री० बार्ट, नूना १९४०

धर्मशास्त्र की इतिहास—सं० दमगुण मासवर्णिवा, निधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९००-२००५

मटीपुत्र—आध्यात्मिक, आध्यात्मिक जी, मुनिमाना, १९६६

मायाधर्मग्रन्थ—सं० सोमाचन्द्र चरितम्, अष्टमहाकाव १९६४

मज्झिमनिकाय—सुन्दरुत्त, जैन ग्रन्थ महाकाव काव्यमाला, बम्बई १९१६

महाय परीक्षा—महायज्ञ जैन ग्रन्थमाला

महायज्ञादि—सं० शास्त्र महायज्ञादि, काशीप्रसाद आश्रमकाव्य ग्रन्थमाला, पटना, १९००-२०१०

महायज्ञादि—सुन्दरुत्त, रावचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई १९३५

महायज्ञादिग्रन्थ—आध्यात्मिक अमोक्ष कृति, जैन ग्रन्थ, ईश्वरकाव

पद्मिनीचन्द्र—आचार्य हेमचन्द्र, सं० डॉ० जे.पी.वी, वनकला, १९३२

परीक्षापुत्र—निर्णय भाग्य ग्रन्थ, बम्बई

पारमार्थिक—श्रीमद्भगवद्

पुराण ग्रन्थमाला—वसन्तधनु ग्रन्थमाला मन्थल, बम्बई

पुत्रचरित—महायज्ञ, सं० बर्मानन्द कोणावी, अष्टमहाकाव १९३७

पुत्रचरितग्रन्थ—आचार्य महेन्द्रदेव, पटना १९५६

पुत्रचरित का इतिहास—डॉ० आनन्दचन्द्र जैन, आशीष प्रकाशन भागपुर

महायज्ञ महावीर—दमगुण मासवर्णिवा

महायज्ञ महावीर : एक अनुष्ठीय—हेमचन्द्र मुनि शास्त्री

महायज्ञ महावीर के जीवन में घटित आध्यात्मिक घटनाओं का पुनर्निर्माण—
डॉ० श्रीमती गुणलता जैन, गुलसी प्रसा, १९७६

महायज्ञादि—अमरदेव कूरि कृति ग्रन्थ, विनायक प्रकाशक सभा, अष्टमहाकाव
१९२२-३१

भारतीय इतिहास एक दृष्टि—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय भागवीठ, काशी
१९५७

भारतीय संस्कृति : एक सभ्यताशास्त्रीय व्याख्या

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन
साहित्य परिषद्, भोपाल १९६२

महावीर चरित—मेमिचन्द्र, आध्यात्मिक भाग्य, भाग्यकर १९२६

महायज्ञादि—सं० अमरीश काव्य, विहार राज्य १९५८

महायज्ञादि—सं० सेनार्ट, पैरिस, १८८२-१८९७

महायज्ञादि—सं० आर० डी० महेश्वर, बम्बई १९४०

महायज्ञादि—मुनि अमलजीनि ग्रन्थमाला, १९१९

- कहावली—मन्देश्वर, स० डॉ० यू० पी० दाह, गायकवाड़ ओरियन्टल गिरोन, बंगोर
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२
- गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—काका कालेलकर
गांधीवाद की राव परीक्षा—यशपाल, रिपब्लिक कार्यालय, सगरऊ
चतुःशतकम्—स० डॉ० भागचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
भार तीर्थेश्वर—प० गुणमाल सधवी
जम्बूद्वीप प्रगति—देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, मुरत १९२०
जैनधर्म का मोनिक इतिहास—आ० हस्तिमल, जयपुर १९७१, १९७४
जैन साहित्य का गृह्य इतिहास—डॉ० मेहता, चौधरी गुलाबचन्द्र, पार्ष्वनाथ विद्यालय,
वाराणसी
जैन साहित्य का इतिहास . पूर्वपीठिका—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्णी दण्डमाना,
वाराणसी
जैनियम इन कुट्टिस्ट निटरेकर—डॉ० भावचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
जैन साहित्यमा विहार—वेचरदाम बोधी
जैन इन्स एण्ड अदर एन्टिक्वीटीज ऑफ मधुरा
जैनायन साहित्य मे भारतीय समाज—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, श्रीमन्मा विद्याभवन,
वाराणसी
टाणावमूक—व्याख्याकार—अमोलक श्रुति, जैन सभ, हैदराबाद
लक्ष्मणभाष्य—रायचन्द्र जैन शास्त्रमाया, बम्बई, १९०६
लक्ष्मणभाष्य—अकमलदेव, स० डॉ० लक्ष्मणकुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
१९५३, १९५७
लक्ष्मणभाष्य—उमाशर्मा, अनु० कैलाशचन्द्र शास्त्री, मधुरा बी०ए०ए० २४७७
लिखितभाष्य—आचार्य गिरिकुमार स० डॉ० उमाश्री, जैन लक्ष्मण शरणक सभ,
मधुरा, १९७१
लिखितभाष्य और उनकी भाषाई प्रगति—डॉ० जैनचन्द्र शास्त्री, जैन लिखित
वर्णिक, भाग १ १९७६
लिखितभाष्य—आचार्य हेमचन्द्र, जैनधर्म प्रसारक सम, भावनगर,
१९०५ १९३३
लिखितभाष्य—स० जगदीश चन्द्रिका लिखित भाष्य १९१६
लिखितभाष्य—इन्द्रभाष्य जैन ज्ञान सभा का भाष्य सभ, १९२०
लिखितभाष्य—डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, १९६६
लिखितभाष्य—स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, भाग १ १९६३
लिखितभाष्य—स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, भाग २ १९६३
लिखितभाष्य—स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, भाग ३ १९६३
लिखितभाष्य—स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, भाग ४ १९६३
लिखितभाष्य—स० डॉ० लक्ष्मण स० जगदीशचन्द्र, भाग ५ १९६३

कन्दर मन्दरा—मं० एच०वी० मारमन

कामधनि—सं० पी० डी० बारट, पूना १९४०

काशाधार काश्मिनी—मं० दत्तमूल मानवनिषा, निधी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि०सं० २००५

कदीमूल—आकाशवार, आत्माराम जी, मुमिबाना, १९६६

काशकामरहाओ—मं० धोसाचन्द्र भास्कर, अहमदाबाद १९६४

कज्जालिदास—कुन्दकुम्भ, जैन ग्रन्थ सत्कार काशीनय, बम्बई १९१६

कजाय वरीदा—समान जैन ग्रन्थमाला

कजायवारीक—मं० राहुल मोहपात्रन, काशीप्रसाद आश्रमवासी संस्था, पटना, वि०सं० २०१०

कज्जलनगर—कुन्दकुम्भ, रायचन्द्र जैन साहित्यमाला, बम्बई १९३५

कज्जलनगरमूल—आकाशवार अमोचक श्रुति, जैन सच, हैदराबाद परिशिष्टसंस्कृत—आचार्य हेमचन्द्र, मं० डॉ० जेठोरी, बम्बई, १९३२

करीदास—निर्लेप सागर प्रेस, बम्बई

काशमरीदा—बोरलपुर

कुर्याथ मिहिरास—परमश्रुत प्रसादक मन्थन, बम्बई

कुदरानि—अरुणोप, मं० कर्मानन्द बोलाफी, अहमदाबाद १९३७

कुदरमन्दरीन—आचार्य जेठोरी देव, पटना १९५६

कुद मरुति का इतिहास—डॉ० आनन्द जैन, आलोचक प्रकाशन मंगलूर

कदवान महावीर—दत्तमूल मानवनिषा

कदवान महावीर : एक अनुमीलन—देवेन्द्र मुनि साहसी

कदवान महावीर के जीवन में घटित आत्मतारिक घटनाओं का पुनर्गोष्ठ्यावन—
डॉ० श्रीमती पुष्पलता जैन, गुमरी प्रका, १९७६

कदवनीमूल—अमरदेव मूरि कृति गहिन, जिनगम प्रकाशक समा, अहमदाबाद १९२२-३१

काशीय इतिहास : एक दृष्टि—डॉ० खोतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९५७

काशीय संस्कृति : एक समाजशास्त्रीय व्याख्या

काशीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—डॉ० हीरालाल जैन, मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद्, भोपाल १९६२

महावीर जयि—नेमिचन्द्र, आत्माराम समा, भावनगर १९२६

महाविमनिषा—मं० अमदीय काश्यप, बिहार राज्य १९५८

महावस्तु—मं० सेनार्ट, बेरिस, १८८२-१८९७

मिनिन्दपट्ट—सं० आर० डी० बरेजर, बम्बई १९४०

मूनाचार—मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, १९१६

- कहावली—महेश्वर, स० डॉ० यू० पी० शाह, नायकवाड़ ओरियन्टल सिरोज, बड़ोडा
केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग १, केम्ब्रिज, १९७२
- गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—काका कालेलकर
- गांधीवाद की शव परीक्षा—यशपाल, विप्लव कार्यालय, लगनऊ
- चतुःशतकम्—स० डॉ० माधवचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
- चार तीर्थंकर—प० गुल्लाल सधवी
- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—देवचन्द्र लातमाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत १९२०
- जैनधर्म का मौलिक इतिहास—आ० हस्तिमल, जयपुर १९७१, १९७४
- जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—डॉ० मेहता, चौधरी गुलाबचन्द्र, पार्ष्वनाथ विद्याभवन,
वाराणसी
- जैन साहित्य का इतिहास : पूर्वपीठिका—प० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वर्णी ग्रन्थमाला,
वाराणसी
- जैनिज्म इन मुडिस्ट लिटरेचर—डॉ० माधवचन्द्र जैन, आलोक प्रकाशन, नागपुर
- जैन साहित्यमा विकास—मेहरदास दोषी
- जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टिक्विटीज ऑफ मधुरा
- जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज—डॉ० जयदीशचन्द्र जैन, बीसम्मा विद्याभवन,
वाराणसी
- ठाणाममून—व्याख्याकार—अमोलक श्रुति, जैन सभ, हैदराबाद
- तत्त्वार्थमाध्य—रायचन्द्र जैन शास्त्रमासा, बम्बई, १९०६
- तत्त्वार्थ वातिक—अवलंबदेव, स० डॉ० महेश्वरकुमार, भारतीय ज्ञानपीठ, वासी,
१९५३, १९५७
- तत्त्वार्थमून—उमाशक्ति, अनु० कैलाशचन्द्र शास्त्री, मधुरा बी०नि०सं० २४७७
- तिस्रोपपत्ति—आचार्य यतिशुक्ल स० डॉ० उपाध्ये, जैन संस्कृति सारसक सभ,
धोनापुर, १९५१
- तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—डॉ० नैमिचन्द्र शास्त्री, जैन विज्ञान
परिषद्, सागर १९७४
- त्रिपिटकशास्त्रागुप्यवर्णि—आचार्य हेमचन्द्र, जैनधर्म प्रसारक मसा, माननगर,
१९०६-१९१३
- वेरनावा—म० जयदीश काश्यप, विहार भाष्य, १९५६
- वर्णनार—देववेरनावा, जैन धर्म शास्त्रकार कार्यालय, बम्बई, १९२०
- इकामवद्—नैमिचन्द्र स० दरवाहीनाथ कोटिया, वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६६
- दत्तवैदिक—सं० डॉ० सुषमी, मेरणाथी महामसा, बनारस, १९६३
- दत्तवैदिक—एच मधेशचन्द्र अय्यर
- विभाषन—म० पी० लक्ष्मण, विविनः लक्ष्मण, दरवाहा
- दीपनिराज—म० जयदीश काश्यप, विहार भाष्य, १९५६

